Mishra, Jwala Prasad
Shivagitā bhasatika
samelā.

Mishra, Jwala Prasad
Shivagita bhasatika
samelā.

संसारमें परम पुरुषार्थ यही है कि, मुक्तिको प्राप्त होना, उसीके निमित्त शास्त्रकारोंने अनेक प्रकारके प्रबन्ध बांधे हैं परन्तु तत्त्वज्ञानके विना मुक्तिका मिलना दुर्लभ है । तत्त्वज्ञानसेही यह प्राणी आत्माको जानकर मुक्त होजाता है ('तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय' इति श्रुतेः) अर्थात् आत्माहीको जानकर इस अधिकारी पुरुषको मुक्तिकी प्राप्ति हो जाती है। आत्मज्ञानके विना मोक्षप्राप्तिका दूसरा उपाय नहीं है और जो दूसरे उपाय लिखे हैं कि (काश्यां तु मरणान्मुक्तिः) काशीमें मरनेसे मुक्ति हो जाती है और (उभाभ्यामेव पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥ तथैव ज्ञानकर्माभ्यां प्राप्यते शाश्वती गतिः) अर्थात् जैसे आकाशमें पक्षी दोनों पंखोंसे उडते हैं इसी प्रकार ज्ञान और कर्मसे मुक्ति होती है तथा (कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः) अर्थात् जनकादि कर्मसेही सिद्धिको प्राप्त होगये तथा (ब्रह्मज्ञानेन मुच्यंते प्रयागमरणेन वा । अथवा स्नानमात्रेण गोमत्याः कृष्णसन्निधौ) अर्थात् यह अधिकारी पुरुष ब्रह्मज्ञानसे मुक्तिको प्राप्त होवे हैं अथवा प्रयागमें शरीर त्यागनेसे अथवा श्रीकृष्णभगवान्के समीप गोमतीतीर्थमें स्नानमात्रसे मुक्ति कथनकरी है, इससे केवल आत्माके ज्ञानसेही मुक्तिकी प्राप्ति होती है, यह नहीं बनसकता, इस शंकाका उत्तर यह है कि, (नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय) यह पूर्वकी श्रुति मुक्तिकी प्राप्ति आत्मज्ञानके विना दूसरे कर्मादिकोंका निषेध करती है, इससे जिस प्रकार आत्मज्ञानरूप तत्त्वज्ञानको साक्षात् मोक्षकी साधनता है, वैसे तिन कर्मोंको साक्षात् मोक्षकी साधनता नहीं, किंतु तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिमेंही उन कर्मादिकोंकी साधनता है । काशीमें मरनेसे इस पुरुषको महादेवजीके उपदेशसे तत्त्वज्ञान होता है उससे

मुक्ति होजाती है इसीप्रकार निष्कामकर्म करनेसेभी तत्त्वज्ञानके प्रतिबंधक नष्ट होकर तत्त्व ज्ञानकी प्राप्ति होती है, इसी प्रकार प्रयागमरण गोमतीस्नान सगुण उपासना यह सब तत्त्वज्ञानके साधन हैं. साक्षात् मुक्तिके साधन नहीं, एक तत्त्वज्ञानही साक्षात् मुक्तिका साधन है, दूसरे उपाय उसके उपयोगी हैं। इस प्रकार परंपराके उपयोगको अंगीकार करके ही शास्त्रमें काशीमरणादिकोंको मुक्तिका साधन कहा है इससे केवल तत्वज्ञानसे मोक्ष माननेसे उन वचनोंमें विरोध नहीं आता और जो केवल कर्मोंकोही मुक्तिका साधन मानते हैं उनसे यह पूछना चाहिये कि संन्यासीके प्रति शास्त्रने जो भिक्षाटनादि कर्म विधान किये हैं उन कर्मोंको मोक्षकी साधनता है, अथवा गृहस्थके प्रति जो शास्त्रने अग्निहोत्रादि विधान किये हैं उन कर्मोंको मोक्षकी साधनता है, संन्यासीके कर्मोंको मोक्षकी साधनता माने तो संन्यासीके भिक्षाटनादि कर्मोंमें गृहस्थीको अधिकार नहीं तो गृहस्थकी मुक्ति न होनी चाहिये, और शास्त्रोंमें गृहस्थकी भी मुक्ति कथन करी है, जैसे (कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः । श्राद्धकृत्सत्यवादी च गृहस्थोपि हि मुच्यते ॥) अर्थात् जनकादिक निष्काम कर्म करकेही मुक्त हुए तथा श्राद्धकरनेवाले, सत्य बोलनेहारे गृहस्थ भी मुक्त होजाते हैं जो संन्यासीके कर्मोंको मोक्षहीकी साधनता मानोगे तो गृहस्थकी मुक्तिको कथन करनेहारे यह सब वचन व्यर्थ होंगे इससे संन्यासीके कर्मोंको मोक्षकी सानधता नहीं संभवती और गृहस्थके कर्मोंकोही मोक्षकी साधनता है, यह पक्ष स्वीकार करो तो गृहस्थके कर्मोंमें संन्यासीको अधिकार नहीं इससे संन्यासीकी मुक्ति न होनी चाहिये और संन्यासीको मुक्तिकी प्राप्ति श्रुति स्मृतियोंमें देखी है (संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्त्वाः) इससे गृहस्थके कर्मोंको मोक्षकी साधनता संभवती नहीं, और जैसे स्वर्गादि सुखमें विलक्षणता है, इस प्रकार मुक्तिमें कोई विलक्षणता

है नहीं जिस विलक्षणताको लेकर विजातीय मुक्तिके प्रति संन्यासीके कर्मोंको कारणता हो, और विजातीय मुक्तिके प्रति गृहस्थको कारणता हो, इससे तिन कर्मोंको साक्षात् मोक्षकी साधनता नहीं संभवती किंवा (तमेतं वेदानुवचनेन ब्राह्मणा विविदिषंति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन) अर्थात् अधिकारी ब्राह्मण इस आत्माको वेदाध्ययन, यज्ञ, दान, तप, अनशन इत्यादि कर्मोंसे जाननेकी इच्छा करते हैं, इस श्रुतिमें यज्ञदानादि कर्मोंको आत्मज्ञानकी इच्छारूप विविदिषाकी अथवा आत्मज्ञानकीही कारणता कथन करी है, मोक्षकी कारणता कथन नहीं की, और (न कर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैकेऽमृतत्वमानशुः) अर्थात् पूर्वज महात्मा अग्निहोत्रादि कर्म, तथा पुत्रादिक प्रजा, तथा सुवर्णादिक धनसे मोक्षको प्राप्त नहीं हुए, किन्तु कर्मादिकोंके त्यागसेही तत्त्वज्ञानद्वारा मोक्षको प्राप्त हुए हैं, यह श्रुति मोक्षकी प्राप्तिमें कर्मोंका निषेध करती है इस कारणसे वे कर्म मोक्षके साधन नहीं हैं किन्तु एक तत्त्वज्ञानही मोक्षका साधन है यह अर्थ सिद्ध हुआ. अत्र यह जानना अवश्य है कि, तत्त्वज्ञान किसको कहते हैं तो इसका उत्तर यह है कि, आत्माको देह इन्द्रियादि सम्पूर्ण अनात्मपदार्थोंसे जो पृथक् जानना है इसका नाम तत्त्वज्ञान है. उस आत्मज्ञानकी प्राप्ति श्रवण, मनन, निदिध्यासन साधनोंसे होती है यथा (आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः) याज्ञवल्क्य मैत्रेयीसे कहते हैं हे मैत्रेयी ! यह आत्मा द्रष्टव्य है अर्थात् आत्मसाक्षात्कार मोक्षरूप इष्टका साधन है, इससे मुमुक्षु पुरुषोंका आत्मसाक्षात्कार अवश्य संपादन करना वह आत्माका साक्षात्कार श्रवण, मनन और निदिध्यासनसे होता है, वेदपाठी सम्पूर्ण युक्तिसम्पन्न आत्मज्ञानी गुरुके मुखसे श्रुतिवाक्योंके अर्थ जाननेका नाम श्रवण है और वेदान्तके अनुकूल युक्तिद्वारा चिरकालसे श्रवण किये अद्वितीय ब्रह्मवस्तुकी चिन्ताका

नाम मनन है, तथा तत्त्वज्ञानके विरोधी देहादि जड पदार्थका ज्ञान, तथा अद्वितीय ब्रह्मवस्तुके अनुकूल ज्ञानके प्रवाहको निदिध्यासन कहते हैं, इन साधनोंके करनेसे ब्रह्मज्ञानकी प्राप्ति होती है और श्रवणादिकी प्राप्तिके वास्ते पुरुषको वैराग्य अवश्य करना चाहिये, अर्थात् दोनों लोकोंके सुखकी इच्छा त्यागनेका नाम वैराग्य है, क्योंकि, वैराग्यसे आत्मशुद्धि और पाप दूर होता है और निष्काम कर्म करनेसे आत्माकी शुद्धि होती है; इस कारण तत्त्वज्ञानकी प्राप्तिके निमित्त सब साधन करने। इस प्रकारसे कर्म, उपासना और ज्ञान यह तीनों परस्पर सापेक्ष हैं और आत्माके ज्ञानमें उपयोगी हैं। कर्म तो उपासना ज्ञानकी अपेक्षा रखता है, उपासना कर्मकी फिर ज्ञानकी अपेक्षा रखती है और ज्ञान कर्म उपासना दोनोंकी अपेक्षा रखता है अर्थात् उपासना और कर्मसे ज्ञान होता है, कर्मसे अन्तः-करणकी शुद्धि, उपासनासे चित्तकी एकाग्रता और ज्ञानसे मुक्ति होती है, क्रमानुसार यह अनुष्ठान करनेसे परमानन्दकी प्राप्ति होती है; इस प्रकार संपूर्ण शास्त्र तत्वज्ञानके विषयमें उपयोगी है, इसी कारण उनके कर्त्ताओंने उनसे मुक्तिकी प्राप्ति वर्णन करी है, उनके गूढ आशयोंको न जानकर बहुधा प्राणी यह कहने लगते हैं कि, एक शास्त्रने दूसरेका विरोध किया है, एक पुस्तक देखनेमें आई उसमें सांख्य और योग इनमें महा भेद प्रतिपादन किया है, और डेढ पंक्तिमेंही उनके मतका निराकरण कर कह दिया कि, यह भी मत समीचीन नहीं परन्तु गीताकेभी इस श्लोकपर ध्यान नहीं दिया कि (सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पंडिताः) अर्थात् सांख्य और योगको बालकबुद्धिवालेही पृथक् मानते हैं, पंडित नहीं। शास्त्र-कारोंने जो परिश्रम किया है उनके आशयको सर्वसाधारणोंको अवगत होना महाकठिन है, तात्पर्यमें किसीके भेद नहीं सबही शास्त्रकारोंने मुक्तिप्राप्तिके निमित्त अपने अपने शास्त्रोंका वर्णन

किया है उनके वाक्य कोई कर्म कोई उपासना और ज्ञानके उपयोगी हैं जो कि, तत्वज्ञानमें सहायक है इसीसे हम उनमें विरोध नहीं कहते हैं । मनुष्यको पक्षपात रहित होकर उनके आशयकी ओर विचार करना चाहिये और आत्मज्ञानकी प्राप्तिके निमित्त उद्योग करना चाहिये जैसा कि, श्रवण मनन तत्वज्ञानके उपयोगी ऊपर कह आये हैं उसी प्रकार उन ग्रन्थोंका विचार भी अवश्य है जिनसे आत्मज्ञानकी प्राप्ति होती है, जो वेदान्तके नामसे विख्यात हैं जिनमें केवल आत्मज्ञानही वर्णन किया गया है । उपनिषद् भगवद्गीता आदि इस विषयके विख्यात ग्रन्थ हैं, जिनसे परम शांति होती है उन्ही वेदान्त ग्रन्थोंमेंसे " शिवगीता " भी एक अद्भुत रत्न है जिसके जाननेसे प्राणीको योग, आत्मज्ञान, शरीरकी गति, कर्म, उपासना, ज्ञान तथा औरभी अनेक विषय ऐसी सरल रीतिसे ध्यानमें आजाते हैं कि, शीघ्र परमानन्दकी प्राप्ति होजाती है, इसमें शिवजीने श्रीरामचन्द्रको ब्रह्मज्ञानका उपदेश किया है, जिसमें महाराजने परमश्रद्धासे श्रवणकर जानकीका वियोग दूर किया है संसारमें आत्मज्ञानसे अधिक कुछ नहीं है इससे जिसमें आत्मज्ञानकी प्राप्ति हो उसकी सर्वोत्कृष्टतामें क्या सन्देह है, वह अमूल्यरत्न आजतक संस्कृत भाषाहीमें था इस कारण सर्व साधारणको उसका आनन्द प्राप्त नहीं होसकता था इस कारण जगत्प्रसिद्ध वैश्यवंशदिवाकर "श्रीवेङ्कटेश्वर" यन्त्रालयाधिपति सेठजी श्रीखेमराज श्रीकृष्णदासजीकी प्रेरणासे इस अनुपम गीताग्रन्थका भाषार्थ महात्माओंकी प्रीतिके निमित्त निर्माण किया है । प्रयोजनानुसार श्रुतिभी [illegible] मील करदी है, और अक्षरका अर्थ दूसरे प्रयोजनमें न चला जाय इस कारण उसकी टीका बहुत विस्तृत नहीं की है और भावार्थ प्रगट करनेमें यथाशक्ति त्रुटिभी नहीं की है आपकी प्रसन्नता हो इसी कारण इस टीकाका नाम भी (प्रसाद)

रक्खा है सज्जन महाशय इसका आदर कर मेरे परिश्रमको सफल करेंगे, यदि कहीं टीकामें कुछ दोष रहगया हो तो अपनी उदारतासे उसको क्षमा करेंगे कारण कि सर्वज्ञ परमेश्वर है उसके गुणोंका पार कौन पासकता है, परन्तु आपनी मतिके अनुसार उसके गुणोंका कथन करते हैं शेषमें शशिभूषण श्रीशंकर पार्वतीवल्लभसे प्रार्थना है कि श्रोता वक्ताके सब प्रकारसे मंगल विधान कर परमानन्दकी प्राप्ति करैं । शुभमस्तु.

पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र,
मुहल्ला दीनदारपुरा—मुरादाबाद.

श्रीः ।

अथ शिवगीता ।

भाषाटीकासमेता ।
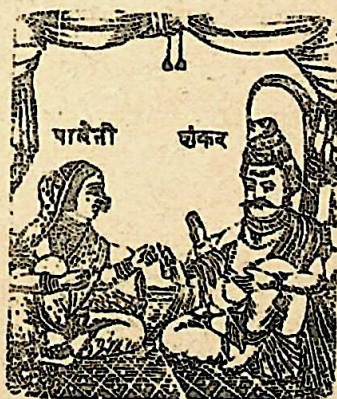
श्रीगणेशाय नमः ॥ श्रीसरस्वत्यै नमः॥ श्रीगुरुभ्यो नमः । श्रीसाम्बसदाशिवाय नमः । ॐ अस्य श्रीशिवगीतामालामन्त्रस्य श्रीवेदव्यासरूपयगस्त्यऋषिः । जगतीच्छन्दः ॥ श्रीसदाशिवःपरमात्मा देवता ॥ प्रणवो बीजम् ॥ सर्वव्यापक इति शक्तिः ॥ ह्रीं कीलकम् ॥ ब्रह्मात्मसाक्षात्कारार्थे जपे विनियोगः । अथ न्यासः॥ ॐश्रीवेदव्यासरूप्यगस्त्यऋषिः शिरसि ॥ ॐजगतीच्छन्दः मुखे।ॐश्रीस-

दाशिव परमात्मादेवता हृदये ॥ ॐ प्रणवो बीजं नाभौ ॥ ॐ सर्वव्यापक इति शक्तिः गुह्ये ॥ ॐ ह्रीं कीलकं पादयोः । ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः ॥ ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः । ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः ॥ ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः ॥ ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ॥ ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ॥ एवं हृदयादि ॥

अथ ध्यानम् ।

अकारं विन्यसेन्नाभौ सत्त्वरूपं निरञ्जनम् ॥
उकारं हृदये विन्द्याद्रजोरूपं द्वितीयकम् ॥ १ ॥
मकारं मूर्ध्नि विन्यस्य तमोरूपं च त्र्यम्बकम् ॥
अकारश्च उकारश्च मकारो बिन्दुलक्षणः ॥ २ ॥
त्रिधा मात्रा स्थित　　　तत्परं ज्योतिरोमिति ॥
अकार उच्यते रुद्रो मकारश्च पितामहः ॥ ३ ॥
उकार उच्यते विष्णुस्तत्परं ज्योतिरोमिति ॥
इच्छा क्रिया तथा शक्तिर्ब्राह्मी गौरी च वैष्णवी ॥ ४ ॥ त्रिधा शक्तिः स्थिता यत्र तत्परं ज्योतिरोमिति ॥ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च देवेन्द्रो देव-

तास्तथा ॥ ५ ॥ अमण्डार्कस्थिराकारं मण्डलं भुवनत्रयम् ॥ धारयन्हृदये ब्रह्म वह्निना सह दृश्यते ॥ ६ ॥ हरिस्वरूपं गगनोपमं परं सर्वात्मकं सात्त्विकमेकमक्षरम् ॥ अलेपनं सर्वगतं यदद्वयं तदेव चाहं प्रणवं यदुक्तम् ॥ ७ ॥ ॐ इति ॥ उत्पन्नात्मावबोधस्य अद्वेष्टृत्वादयो गुणाः ॥ अशेषतो भवन्त्यस्य ननु संधानरूपिणः ॥ ८ ॥ इति ध्यानम् ॥

सूत उवाच ।

अथातः संप्रवक्ष्यामि शुद्धं कैवल्यमुक्तिदम् ॥
अनुग्रहान्महेशस्य भवदुःखस्य भेषजम् ॥ १ ॥

दोहा–गौरि गिरीश गणेश रवि, शशि सहसानन राम।
सबको वंदन करतहूँ, सिद्ध होहिं सब काम ॥

सूतजी बोले–हे शौनकादिको ! इसके उपरान्त अब मैं शुद्ध और कैवल्यमुक्तिदायक संसारके दुःख छुडानेमें औषधीरूप शिवगीतारत्नको शिवजीके अनुग्रहसे वर्णन करता हूं ॥ १॥

न कर्मणामनुष्ठानैर्न दानैस्तपसापि वा ॥
कैवल्यं लभते मर्त्यः किंतु ज्ञानेन केवलम् ॥ २ ॥

न कर्मोंके अनुष्ठान, न दान, न तपसे मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होता है किन्तु ज्ञानसेही प्राप्त होता है ॥ २ ॥

रामाय दण्डकारण्ये पार्वतीपतिना पुरा ॥
याप्रोक्ता शिवगीताख्या गुह्याद्गुह्यतमा हि सा ॥ ३ ॥

आगे शिवजीने दण्डकवनमें रामचन्द्रको जो शिवगीता उपदेश की है वह गुप्तसेभी गुप्त है ॥ ३ ॥

यस्याः श्रवणमात्रेण नृणां मुक्तिर्ध्रुवं भवेत् ॥
पुरा सनत्कुमाराय स्कन्देनाभिहिता हि सा ॥ ४॥

जिसके श्रवणमात्रसे ही मनु [illegible] प्राप्त हो जाता है जो पूर्वकालमें स्कन्दजीने सनत्कुमारसे वर्णन की थी ॥ ४ ॥

सनत्कुमारः प्रोवाच व्यासाय मुनिसत्तमः ॥
मह्यं कृपातिरेकेण प्रददौ बादरायणः ॥ ५ ॥

वह मुनिश्रेष्ठ सनत्कुमार व्यासजीसे कहते भए। व्यासजीने कृपाकरके वह हमसे वर्णन की ॥ ५ ॥

उक्तं च तेन कस्मैचिन्न दातव्यमिदं त्वया ॥
सूतपुत्रान्यथा देवाः क्षुभ्यन्ति च शपन्ति च ॥ ६॥

और कहाभी था कि, तुम यह गीता किसीको नहीं देना, हे सूतपुत्र ! ऐसा वचन पालन न करनेसे देव क्षुभित हो शाप देते हैं ॥ ६ ॥

अथ पृष्टो मया विप्रा भगवान्बादरायणः ॥
भगवन्देवताःसर्वाः किंक्षुभ्यन्ति शपन्ति च ॥७॥

हे ब्राह्मणो ? तब मैंने भगवान् व्यासजीसे पूछा हे भगवन् ? सब देवता क्यों क्षोभ करते और शाप देते हैं ॥ ७ ॥

तासामत्रास्ति का हानिर्यया कुप्यन्ति देवताः ॥
पाराशर्योऽथ मामाह यत्पृष्टं शृणुवत्स तत्॥८॥

उनकी इसमें क्या हानि है, जो वे देवता क्रोध करते हैं। यह सुनकर व्यासजी मुझसे बोले हे वत्स। तू अपने प्रश्नका उत्तर सुन ॥ ८ ॥

नित्याग्निहोत्रिणो विप्राः संति ये गृहमेधिनः ॥
त एव सर्वफलदाः सुराणां कामधेनवः ॥ ९ ॥

जो ब्राह्मण नित्य अग्निहोत्र करते और गृहस्थाश्रममें रहते हैं वेही सब फलोंको देनेहारे देवताओंको कामधेनु हैं ॥९॥

भक्ष्यं भोज्यं च पेयं च यद्यादिष्टं सुपर्वणाम् ॥
अग्नौ हुतेन हविषा तत्सर्वं लभते दिवि ॥ १० ॥

भक्ष्य, भोज्य, पान करने योग्य जो कुछ पर्वोंमें यज्ञ किया गया है; सो हविर्द्वारा अग्निमें आहुती दी गई है, वह सब स्वर्गमें मिलती है ॥ १० ॥

नान्यदस्ति सुरेशानामिष्टसिद्धिप्रदं दिवि ॥
दोग्ध्री धेनुर्यथा नीता दुःखदा गृहमेधिनाम् ११

देवताओंको स्वर्गमें इष्टसिद्धि देनेवाला और कुछ नहीं है जैसे गृहस्थी पुरुषोंको दुही गई गाय लेजानेसे केवल दुःखही होता है ॥ ११ ॥

तथैवं ज्ञानवान्विप्रो देवानां दुःखदो भवेत् ॥
त्रिदशास्तेन विघ्नंति प्रविष्टा विषयं नृणाम्॥१२॥

इसी प्रकार ज्ञानवान् ब्राह्मण देवताओंको दुःखदाता ही कारण कि, वह कर्म नहीं करता इस कारण इसके विषय भार्या पुत्रादिमें प्रवेश करके देवता विघ्न करते हैं ॥ १२ ॥

ततो न जायते भक्तिः शिवे कस्यापि देहिनः ॥
तस्मादविदुषां नैव जायते शूलपाणिनः ॥ १३ ॥

इससे किसी देहधारीकी शिवजीमें भक्ति नहीं होती इस कारण मूर्खोंको शिवजीका प्रसाद नहीं मिलता ॥ १३ ॥

यथाकथंचिज्जातापि मध्ये विच्छिद्यते नृणाम् ॥
जातं वापि शिवज्ञानं न विश्वासं भजत्यलम् १४॥

और जो यथाकथञ्चित् जानता भी है वह किसी कारण मध्यमेंही खंडित हो जाता और जो किसीको ज्ञान हुआभीं तो वह विश्वाससे नहीं भजता ॥ १४ ॥

ऋषय ऊचुः ।

यद्येवं देवता विघ्नमाचरन्ति तनूभृताम् ॥
पौरुषं तत्र कस्यास्ति येन मुक्तिर्भविष्यति॥१५॥

ऋषि बोले–इस प्रकारसे देवता शरीरधारीयोंको विघ्न करते हैं तो फिर इसमें किसका पराक्रम है जो मुक्तिको प्राप्त होता ॥ १५ ॥

सत्यं सूतात्मज ब्रूहि तत्रोपायोऽस्ति वा न वा॥

हे सूतपुत्र । आप सत्य कहिये कि, इनका उपाय है वा नहीं है ॥

सूत उवाच।

कोटिजन्मार्जितैः पुण्यैः शिवे भक्तिः प्रजायते ॥ १६

सूतजी बोले—करोड जन्मके पुण्यसंचय होनेसे शिवजीमें भक्ति उत्पन्न होती है ॥ १६ ॥

इष्टापूर्तादिकर्माणि तेनाचरति मानवः ॥

शिवार्पणधिया कामान्परित्यज्य यथाविधि॥१७॥

उस भक्तिके होनेसे इष्टापूर्तादि कर्मोंकी कामना छोडकर मनुष्य शिवजीमें अर्पण बुद्धिसे यथाविधि कर्म करता है ॥१७॥

अनुग्रहात्तेन शंभोर्जायते सुदृढो नरः ॥

ततो भीताः पलायन्ते विघ्नं हित्वा सुरेश्वराः॥१८

उन शिवजीकी कृपासे जब यह प्राणी दृढ भक्तिमान् होता है, तब विघ्न छोडकर भयभीत हो देवता चले जाते हैं ॥१८॥

जायते तेन शुश्रूषा चरिते चन्द्रमौलिनः ॥

शृण्वतो जायते ज्ञानं ज्ञानादेव विमुच्यते ॥१९॥

उस भक्तिके करनेसे शिवजीके चरित्र श्रवण करनेकी अभिलाषा उत्पन्न होती है, सुननेसे ज्ञान और ज्ञानसे मुक्ति हो जाती है ॥ १९ ॥

बहुनात्र किमुक्तेन यस्य भक्तिः शिवे दृढा ॥

महापापोपपापौघकोटिग्रस्तोऽपि मुच्यते ॥२० ॥

बहुत कहनेसे क्या है, जिसकी शिवजीमें दृढ भक्ति है वह करोडों पापोंसे ग्रसा हो तो भी मुक्त हो जाता है ॥ २० ॥

अनादरेण शाठ्येन परिहासेन मायया ॥
शिवभक्तिरतश्चेत्स्यादन्त्यजोऽपि विमुच्यते २१॥

अनादरसे, मूर्खतासे, परिहाससे, कपटतासेभी जो मनुष्य शिवभक्तिमें तत्पर है वह अन्त्यज (चांडाल) हो तो भी मुक्त हो जाता है ॥ २१ ॥

एवं भक्तिश्च सर्वेषां सर्वदा सर्वतोमुखी ॥
तस्यां तु विद्यमानायां यस्तु मर्त्यो न मुच्यते २२

इस प्रकारसे भक्ति सदा सबके करने योग्य है, इस भक्तिके होतेभी जो मनुष्य संसारसे न छूटै ॥ २२ ॥

संसारबन्धनात्तस्मादन्यः को वास्ति मूढधीः ॥
नियमाद्यस्तु कुर्वीत भक्तिं वा द्रोहमेव वा ॥२३॥

उस संसारबंधनसे न छूटनेवालेके समान दूसरा कोई भी मूर्ख नहीं, और कुछ शिवजी भक्तिसे ही प्रसन्न नहीं होते जो नियमसे केवल भक्ति या द्रोहही करते हैं ॥ २३ ॥

तस्यापि चेत्प्रसन्नोऽसौ फलं यच्छति वाञ्छितम् ॥
ऋद्धं किंचित्समादाय क्षुल्लकं जलमेव वा ॥ २४॥

उनपरभी प्रसन्न हो शिव मानवांछित फलप्रदान करते हैं बडे मोलकी वस्तु कुछ लेकर वा अल्प मोलकी वस्तु अथवा केवल जलही लेकर ॥ २४ ॥

यो दत्ते नियमेनासौ तस्मै दत्ते जगत्त्रयम् ॥
तत्राप्यशक्तो नियमान्नमस्कारं प्रदक्षिणाम् ॥२५॥

जो नियमसे शिवार्पण करते हैं, शिवजी प्रसन्न हो उसे त्रैलोक्य देते हैं, और जो यह न होसके तो नियमसे नमस्कार वा प्रदक्षिणा ॥ २५ ॥

यः करोति महेशस्य तस्मै तुष्टो भवेच्छिवः ॥
प्रदक्षिणास्वशक्तोऽपि यः स्वान्ते चिन्तयेच्छिवम् २६

जो नित्यप्रति शिवजीकी करता है, उसके ऊपरभी शिवजी प्रसन्न होते हैं, और जो प्रदक्षिणामें असमर्थ हो केवल मनमें ही शिवजीका ध्यान करै ॥ २६ ॥

गच्छन्समुपविष्टो वा तस्याभीष्टं प्रयच्छति ॥
चन्दनं बिल्वकाष्ठस्य पुष्पाणि वनजान्यपि ॥२७॥

चलते बैठतेमें जो उनका स्मरण करे उसको भी अभीष्ट पदार्थ प्रदान करते हैं, चन्दन बेलकाष्ठ तथा वनमें उत्पन्न हुए ॥ २७ ॥

फलानि तादृशान्येव यस्य प्रीतिकराणि वै ॥
दुष्करं तस्य सेवायां किमस्ति भुवनत्रये ॥ २८ ॥

फल जिसके अधिक प्रीति करनेवाले हैं उन शिवजीकी सेवा करनेमें त्रिलोकीमें कौन वस्तु दुर्लभ है ॥ २८ ॥

वन्येषु यादृशी प्रीतिर्वर्तते परमेशितुः ॥
उत्तमेष्वपि नास्त्येव तादृशी ग्रामजेष्वपि ॥ २९ ॥

वनके उत्पन्न हुए फल मूलादिमें शिवजीकी जैसी प्रीति है वैसी ग्राम नगरके उत्पन्न हुए उत्तम उत्तम फल मूलोंमें नहीं २९

तं त्यक्त्वा तादृशं देवं यः सेवेतान्यदेवताम् ॥
सहि भागीरथीं त्यक्त्वा कांक्षते मृगतृष्णिकाम् ३०

जो ऐसे देवताको छोडकर अन्य देवताका भजन सेवन करता है वह मानो गंगाका त्याग करके मृगतृष्णाकी इच्छा करता है ॥ ३० ॥

किंतु यस्यास्ति दुरितं कोटिजन्मसु संचितम् ॥
यस्य प्रकाशते नायमर्थो मोहान्धचेतसः ॥ ३१ ॥

परन्तु जिनको करोडों जन्मोंके पाप चिपट रहे हैं उनका चित्त अज्ञानअंधकारसे आच्छादित हो रहा है, उनको शिवजीकी भक्ति प्रकाशित नहीं होती ॥ ३१ ॥

न कालनियमो यत्र न देशस्य स्थलस्य च ॥
यत्रास्य चित्तं रमते तस्य ध्यानेन केवलम् ॥ ३२ ॥

काल देश स्थलका कुछ नियम नहीं है जहां इसका चित्त रमै वहीं ध्यान करे ॥ ३२ ॥

आत्मत्वेन शिवस्यासौ शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥
अतिस्वल्पतरायुःश्रीर्भूतेशांशाधिपोऽपि यः ॥ ३३ ॥

शिवरूपसे अपने आत्मामें ध्यान करनेसे शिवकीही मुक्तिको प्राप्त होजाता है, जिसकी आयु बहुत थोडी, लक्ष्मीसे भी हीन हो और शिवजीकी एक अंशरूपी सार्वभौमपदयुक्त ॥ ३३

स तु राजाहमस्मीति वादिनं हन्ति सान्वयम् ॥
कर्तापि सर्वलोकानामक्षय्यैश्वर्यवानपि ॥ ३४ ॥

'मैं राजा हूं' ऐसे अभिमानसे कहनेवालेको वंशरहित संहार करते हैं। जो सम्पूर्ण लोकका कर्ता तथा अक्षय ऐश्वर्यवान् पुरुष भी ॥ ३४ ॥

शिवः शिवोऽहमस्मीति वादिनं यं च कश्चन ॥
आत्मना सह तादात्म्यभागिनं कुरुते भृशम्॥३५॥

अभिमानरहित हो जो 'शिवः शिवोहं' इस प्रकारसे कथन करता है उसके शिव आत्मस्वरूपको तादात्म्यभागी अर्थात् शिवरूप ही कर देते हैं ॥ ३५ ॥

धर्मार्थकाममोक्षाणां पारं यस्याथ येन वै ॥
मुनयस्तत्प्रवक्ष्यामि व्रतं पाशुपताभिधम्॥ ३६ ॥

हे ऋषियो ! जिस व्रतके करनेसे प्राणीके धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष यह चारों पदार्थ हस्तगत होते हैं मैं वह पाशुपत व्रत तुमसे वर्णन करता हूं ॥ ३६ ॥

कृत्वा तु विरजां दीक्षां भूतिरुद्राक्षधारिणः ॥
जपन्तो वेदसाराख्यं शिवनामसहस्रकम् ॥ ३७ ॥

विरजा नामक दीक्षाको करके विभूति और रुद्राक्षको धारण कर वेदसारनामक शिवसहस्रनामको जप करते हुए॥ ३७॥

संत्यज्य तेन मर्त्यत्वं शैवीं तनुमवाप्स्यथ ॥
ततः प्रसन्नो भगवाञ्छंकरो लोकशङ्करः ॥ ३८ ॥

इस मानव शरीरको त्यागकर शैवशरीरको प्राप्त होनेपर लोकोंके कल्याण करनेवाले शंकर प्रसन्न होकर ॥ ३८ ॥

भवतां दृश्यतामेत्य कैवल्यं वः प्रदास्यति ॥
रामाय दण्डकारण्ये यत्प्रादात्कुम्भसंभवः॥ ३९ ॥

तुमको दर्शन देकर कैवल्य मुक्ति देंगे जब रामचन्द्र दण्डकारण्यमें वास करते थे, तब अगस्त्यजीने उन्हें वह उपदेश दिया था ॥ ३९ ॥

तत्सर्वं वः प्रवक्ष्यामि शृणुध्वं भक्तियोगिनः ॥४०॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे शिवभक्त्युत्कर्षनिरूपणं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

वह मैं सब तुमसे कहता हूँ तुम भक्तियुक्त हो श्रवण करो४०

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे अगस्त्यराघवसंवादोपक्रमे भाषाटीकायां प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

ऋषय ऊचुः ।

किमर्थमागतोऽगस्त्यो रामचन्द्रस्य सन्निधिम् ।
कथं वा विरजां दीक्षां कारयामास राघवम् ॥
ततः किमाप्तवान्रामः फलं तद्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

ऋषि बोले–अगस्त्यजी रामचंद्रके निकट क्यों आयेथे और किस प्रकारसे रामचंद्रसे विरजा दीक्षा कराई थी इससे रामचंद्रको किस फलकी प्राप्ति हुई सो आप हमसे कहिये ॥१॥

सूत उवाच ।

रावणेन यदा सीताऽपहृता जनकात्मजा ॥
तदा वियोगदुःखेन विलपन्नास राघवः ॥ २ ॥

सूतजी बोले—जिस समय जनककुमारी सीताको रावणने हरण किया था, तब रामचंद्रने वियोगके कारण बहुत विलाप किया ॥ २ ॥

निर्निद्रो निरहंकारो निराहारो दिवानिशम् ॥
मोक्तुमैच्छत्ततः प्राणान्सानुजो रघुनन्दनः ॥ ३ ॥

निद्रा देहाभिमान और भोजन त्यागकर रातदिन शोक करते भाईसहित रामचन्द्रने प्राण त्याग करनेकी इच्छा की ३॥

लोपामुद्रापतिर्ज्ञात्वा तस्य सन्निधिमागतम् ॥
अथ तं बोधयामास संसारासारतां मुनिः ॥४॥

अगस्त्यजी यह बात जानकर रामचन्द्रके समीप आये और मुनिने रामचन्द्रको संसारकी असारता समझाई ॥ ४ ॥

अगस्त्य उवाच ।

किं विषीदसि राजेन्द्र कान्ता कस्य विचार्यताम्॥
जडः किं नु विजानाति देहोऽयं पाञ्चभौतिकः५॥

अगस्त्यजी बोले—हे राजेन्द्र । यह क्या विषाद करते हो स्त्री किसकी इसका विचार तो करो पृथ्वी, आप, तेज, वायु, और आकाश इन पांच महाभूतोंका बना हुआ यह देह जड़ है इसको ज्ञान नहीं होता ॥ ५ ॥

निर्लेपः परिपूर्णश्च सच्चिदानन्दविग्रहः ॥
आत्मा न जायते नैव म्रियते न च दुःखभाक् ॥ ६॥

और आत्मा तो निर्लेप सर्वत्र परिपूर्ण सच्चिदानन्दस्वरूप है आत्मा न कभी उत्पन्न होता न मरता न दुःख भोगता है ॥ ६॥

सूर्योऽसौ सर्वलोकस्य चक्षुष्ट्वेन व्यवस्थितः ॥
तथा चाक्षुषैर्दोषैर्न कदाचिद्विलिप्यते ॥ ७ ॥

जिस प्रकार यह सूर्य संपूर्ण संसारके चक्षुरूपसे स्थित है और चक्षुओंके दोषसे कभी लिप्त नहीं होता ॥ ७ ॥

सर्वभूतान्तरात्मापि यद्वद्दृश्यैर्न लिप्यते ॥
देहोऽपि मलपिण्डोऽयं मुक्तजीवो जडात्मकः ॥ ८॥

इसी प्रकार सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा भी दुःखमें लिप्त नहीं होता और यह देह भी मलका पिंड तथा जड है यह जीव कलारहित होनेसे जड है ॥ ८ ॥

दह्यते वह्निना काष्ठैः शिवाद्यैर्भक्ष्यतेऽपि वा ॥
तथापि नैव जानाति विरहे तस्य का व्यथा ॥ ९॥

यह काष्ठ अग्निके संयोगसे भस्म होजाता है, सियार आदि इसको खाजाते हैं, तौभी नहीं जानता कि उसके वियोगमें क्या दुःख होता है ॥ ९ ॥

सुवर्णगौरी दूर्वाया दलवच्छ्यामलापि वा ॥
पीनोत्तुङ्गस्तनाभोगभुग्नसूक्ष्मविलग्निका ॥ १० ॥

जिसका सुवर्णके समान गौरवर्ण, अथवा दूर्वादलके समान श्याम स्वरूप है, कुचकलश जिसके उन्नत हैं, मध्यभाग सूक्ष्म है ॥ १० ॥

बृहन्नितम्बजघना रक्तपादसरोरुहा ॥
राकाचन्द्रमुखी बिम्बप्रतिबिम्बरदच्छदा ॥ ११ ॥

बडे नितम्ब और जांघोंवाली चरणतल जिसका कमलके सदृश रक्तवर्ण है जिसका मुख पूर्णिमाके चन्द्रमाके समान है और पके बिंबाफलके समान जिसके अधरोष्ठ हैं ॥ ११ ॥

नीलेन्दीवरनीकाशनयनद्वयशोभिता ॥
मत्तकोकिलसँल्लापा मत्तद्विरदगामिनी ॥ १२ ॥

नील कमलके समान जिसके विशाल नेत्र हैं, मत्त कोकिलाके समान जिसके वचन और मत्त हाथीकी समान जिसकी चाल है ॥ १२ ॥

कटाक्षैरनुगृह्णाति मां पञ्चेषुशरोत्तमैः ॥
इति यां मन्यते मूढः स तु पञ्चेषुशासितः ॥ १३ ॥

ऐसी स्त्री कामदेवके बाणके समान कटाक्षोंसे मेरे ऊपर कृपा करती है इस प्रकारसे जो मूर्ख मानता है वही कामका शिष्य है ॥ १३ ॥

तस्या विवेकं वक्ष्यामि शृणुष्वावहितो नृप ॥
न च स्त्री न पुमानेष नैव चायं नपुंसकः ॥ १४ ॥

हे राजन् ! सावधान होकर सुनो मैं इसका विवेक कथन करताहूँ यह जीव स्त्री पुरुष या नपुंसक नहीं है ॥ १४ ॥

अमूर्तः पुरुषः पूर्णो द्रष्टा देही स जीवनः ॥
या तन्वङ्गी मृदुर्बाला मलपिण्डात्मिका जडा१५॥

यह देही मूर्तिरहित सब देहोंमें स्थित रूपरहित सर्वव्यापी सबका साक्षी देहमें स्थित हो प्राणीको सजीव करनेवाला है, जिसको सूक्ष्मांगी सुकुमारी बाला कहते हैं वह एक मलका पिंड और जडस्वरूप है ॥१५ ॥

सा न पश्यति यत्किञ्चिन्न शृणोति न जिघ्रति ॥
चर्ममात्रा तनुस्तस्याबुद्ध्वा त्यक्षस्व राघव ॥१६॥

वह न कुछ देखती न सुनती न सूंघती है तिसका शरीर चर्ममात्रका है हे रामचंद्र ! बुद्धिसे विचारो और छोडो ॥१६॥

या प्राणादधिका सैव हंत ते स्याद्घृणास्पदम् ॥
जायन्ते यदि भूतेभ्यो देहिनः पाञ्चभौतिकाः१७

जो प्राणोंसेभी अधिक प्यारी है वही सीता तुम्हारी दुःखका कारण होगी । पंच महाभूतोंसे उत्पन्न होनेके कारण पांचभौतिक देह उत्पन्न होते हैं ॥ १७ ॥

आत्मा यदेकलस्तेषु परिपूर्णः सनातनः ॥
का कान्ता तत्र कः कान्तः सर्व एव सहोदराः१८॥

परन्तु उन सबमें आत्मा एक परिपूर्ण सनातन है इस विचारसे कौन स्त्री और कौन पुरुष सबही सहोदर हैं ॥ १८ ॥

निर्मितायां गृहावल्यां तदवच्छिन्नतां गतम् ॥
न भस्तस्यां तु दग्धायां न कांचित्क्षतिमृच्छति १९

जिस प्रकार अनेक गृह निर्माण करनेमें आकाश अवच्छिन्न-ताको प्राप्त होता है अर्थात् उन सबमें मिल जाता है पश्चात् उन घरोंके जल जानेपर कुछ हानिको भी प्राप्त नहीं होता ॥ १९ ॥

तद्वदात्मापि देहेषु परिपूर्णः सनातनः ।
हन्यमानेषु तेष्वेव स स्वयं नैव हन्यते ॥ २० ॥

इसी प्रकार देहोंमें परिपूर्ण और सनातन है देहसम्बंधसे अनेक प्रकारका प्रतीत होता है परन्तु उनके नाश होनेपर आत्मा नष्ट नहीं होता, वह एकरूप है ॥ २० ॥

हन्ता चेन्मन्यते हंतुं हतश्चेन्मन्यते हतम् ॥
तावुभौ न विजनीतो नायं हन्ति न हन्यते ॥२१॥

जो मारनेवाला जानता है मैंने मारा जो मरनेवाला जानता है मैं मरा यह दोनो न जाननेसे मूर्ख हैं, कारण कि न यह मारता है न वह मारा जाता है ॥२१ ॥

अस्मान्नृपातिदुःखेन किं खेदस्यास्ति कारणम् ॥
स्वस्वरूपं विदित्वैवं दुःखं त्यक्त्वा सुखीभव२२॥

हे राम ! इस कारण अतिदुःख करनेसे, खेदका कारण क्या है अपना स्वरूप इसप्रकार जानकर दुःखको त्यागकर सुखी हो २२

राम उवाच ।

मुने देहस्य नो दुःखं नैव चेत्परमात्मनः ॥
सीतावियोगदुःखाग्निर्मां भस्मीकुरुते कथम् ॥ २३ ॥

श्रीरामचंद्र बोले—हे मुने ! जब देहको भी दुःख नहीं होता और परमात्माको भी दुःख नहीं होता है तो सीताके वियोगकी अग्नि मुझे कैसे भस्म करती है ॥ २३ ॥

सदाऽनुभूयते योऽर्थः स नास्तीति त्वयेरितः ॥
जायतां तत्र विश्वासः कथं मे मुनिपुङ्गव ॥ २४ ॥

जो वस्तु सदा अनुभव करी जाती है तुम कहते हो कि वह नहीं है । हे मुनि श्रेष्ठ ! फिर इस बातमें मुझे कैसे विश्वास हो ॥ २४ ॥

अन्योऽत्र नास्तिको भोक्ता येन जन्तुः प्रतप्यते ॥
सुखस्य वापि दुःखस्य तद्ब्रूहि मुनिसत्तम ॥ २५ ॥

जब सुख दुःखको भोक्ता जीव नहीं है, तो कौन है ? जिसके द्वारा प्राणी दुःखी होता है, सो सुखदुःखको भोक्ता कौन हे । हे मुनिश्रेष्ठ कहिये ॥ २५ ॥

अगस्त्य उवाच ।

दुर्ज्ञेया शांभवी माया यया संमोह्यते जगत् ॥
मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम् ॥ २६ ॥

अगस्त्यजी बोले—शिवजीकी माया कठिनतासे जानने

योग्य है जिनने जगत्को मोहलिया है उस मायाको तो प्रकृति जानो और मायावाला महेश्वरको जानो ॥ २६ ॥

तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥
सत्यज्ञानात्मकोऽनन्तो विभुरात्मा महेश्वरः ॥२७॥

उसीके अवयवरूप जीवोंसे सम्पूर्ण जगत व्याप्त है, वह महेश्वर सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप अनन्त और सर्वव्यापी है २७

तस्यैवांशो जीवलोके हृदये प्राणिनां स्थितः ॥
विस्फुलिङ्गा यथा वह्नेर्जायन्ते काष्ठयोगतः ॥२८॥

उसीका अंश जीवलोकमें सब प्रणियोंके हृदयमें स्थित हुआ है जिस प्रकारसे काष्ठके योगसे अग्निमें स्फुलिंग उठते हैं इसीप्रकार जीव भी परमात्मासे होता है ॥ २८ ॥

अनादिकर्मसंबद्धास्तद्वदंशा महेशितुः ॥
अनादिवासनायुक्ताः क्षेत्रज्ञा इति ते स्मृताः ॥२९॥

यह ईश्वरांश जीव अनादिकालके कर्मबन्धनपाशमें बँधे हैं यह अनादिवासनाओंसे युक्त हैं और क्षेत्रज्ञ कहलाते हैं ॥ २९ ॥

मनो बुद्धिरहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम् ॥
अन्तःकरणमित्याहुस्तत्र ते प्रतिबिम्बिताः ॥३०॥

मन बुद्धि चित्त अहंकार यह चारों अन्तःकरणकेही भेद हैं इस अन्तःकरण चतुष्टयमें क्षेत्रज्ञोंका प्रतिबिम्ब पडता है ॥ ३० ॥

जीवत्वं प्राप्नुयुः कर्मफलभोक्तार एव ते ॥

ततो वैषयिकं तेषां ,सुखं वा दुःखमेव वा ॥
त एव भुञ्जते भोगायतनेऽस्मिञ्छरीरके ॥ ३१ ॥

वही जीवपनको प्राप्त होकर कर्मफलके भोक्ता हुए हैं, वही जीव कर्म भोगनेके स्थान स्थूल देहोंको प्राप्त होकर विषय सेवन करनेसे सुख वा दुःख भोग करते हैं ॥ ३१ ॥

स्थावरं जङ्गमं चेति द्विविधं वपुरुच्यते ॥ ३२ ॥

स्थावर जंगमके भेदसे दो प्रकारका शरीर कहा जाता है ३२ ॥

स्थावरास्तत्र देहाः स्युः सूक्ष्मा गुल्मलतादयः ॥
अण्डजाःस्वेदजास्तद्वदुद्भिज्जा इति जङ्गमाः ३३ ॥

वृक्ष, लता, गुल्म, यह स्थावर सूक्ष्म देह कहलाते हैं, और अण्डज पक्षी सर्प इत्यादिं, स्वेदज कृमि मशकादि, जरायुज मनुष्य गौ आदि यह जंगम शरीर कहलाते हैं ॥ ३३ ॥

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ॥
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ ३४ ॥

कितने एक प्राणी शरीर धारणके निमित्त कर्मानुसार योनियोंमें प्रवेश करते हैं और दूसरे वृक्षोंका आश्रय करते हैं ॥ ३४ ॥

सुख्यहं दुःख्यहं चेति जीव एवाभिमन्यते ॥
निर्लेपोऽपि परं ज्योतिर्मोहितः शंभुमायया ॥ ३५ ॥

जब यह जीव विषयोंमें लिप्त होता है तब मैं सुखी हूं दुःखी हूं ऐसा मानता है यद्यपि यह निर्लेप ज्योतिःस्वरूप है परन्तु शिवजीकी मायासे मोहित हो सुखदुःखका अभिमानी होता है ३५ ॥

कामः क्रोधस्तथा लोभो मदो मात्सर्यमेव च ॥
मोहश्चेत्यरिषड्वर्गमहंकारगतं विदुः ॥ ३६ ॥

काम, क्रोध, लोभ, मद, मात्सर्य और मोह ये छः महाशत्रु अहंकारसे उत्पन्न होते हैं ॥ ३६ ॥

स एव बोध्यते जीवः स्वप्नजाग्रदवस्थयोः ॥
सुषुप्तौ तदभावाच्च जीवः शंकरतां गतः ॥३७॥

यही अहंकार स्वप्न और जाग्रत् अवस्थामें जीवको दुःख देताहै और सुषुप्तिमें सूक्ष्मरूपके होने और अहंकारके अभावसे यह जीव शंकरता (आनन्दरूप) को प्राप्त होता है॥ ३७॥

स एव मायासंस्पृष्टः कारणं सुखदुःखयोः ॥
शुक्तौ रजतवद्विश्वं मायया दृश्यते शिवे ॥ ३८ ॥

इस प्रकार यह मायामें मिलनेसे सुख दुःखका कारण उत्पन्न करता है जिस प्रकार सूर्यकी किरणोंके पडनेसे सीपीमें चाँदी भासती है, इसी प्रकार शिवस्वरूपमें मायासे विश्व दीखता है ॥ ३८ ॥

ततो विवेकज्ञानेन न कोऽप्यत्रास्ति दुःखभाक् ॥
ततो विरम दुःखात्त्वं किं मुधा परितप्यसे॥३९॥

इस कारण तत्त्वज्ञानसे तो कोई भी दुःखभागी नहीं है इससे हे राम ! तुम दुःखको त्यागो वृथा क्यों दुःखी होते हो ॥ ३९ ॥

श्रीराम उवाच ।

मुने सर्वमिदं तथ्यं यन्मदग्रे त्वयोरितम् ॥
तथापि न जहात्येतत्प्रारब्धाहष्टमुल्बणम् ॥ ४० ॥

श्रीरामचन्द्र बोले, हे मुनिराज ! जो तुमने मेरे सम्मुख कहा है, यह सब सत्य है तथापि यह भयंकर प्रारब्ध दैवका दुःख मुझे नहीं छोडता है ॥ ४० ॥

मत्तं कुर्याद्यथा मद्यं नष्टाविद्यमपि द्विजम् ॥
तद्वत्प्रारब्धभोगोपि न जहाति विवेकिनम् ॥ ४१ ॥

जिस प्रकार मद्य प्राणीको मत्त करदेता है इसी प्रकार अज्ञानहीन तत्वज्ञानयुक्त ब्राह्मणको भी प्रारब्धकर्म नहीं छोडता ॥ ४१ ॥

ततः किं बहुनोक्तेन प्रारब्धसचिवः स्मरः ॥
बाधते मां दिवारात्रमहंकारोऽपि तादृशः ॥ ४२ ॥

बहुत कहनेसे क्या है यह काम प्रारब्धका मन्त्री है, यह मुझको दिनरात पीडा देता है और इसी प्रकारसे अहंकार भी दुःख देता है ॥ ४२ ॥

अत्यन्तपीडितो जीवः स्थूलदेहं विमुञ्चति ॥
तस्माज्जीवाप्तये मह्यमुपायः क्रियतां द्विज ॥ ४३ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्म

विद्यायां योगशास्त्रे अगस्त्यराघवसंवादे वैराग्योप-
देशो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

जीव अत्यन्त पीडित होकर स्थूल देहको त्याग करता है। इस कारण हे ब्राह्मण! मेरे जीवनके निमित्त उपाय करो ॥ ४३ ॥

इति श्रीप० शिवगीतासू० ब्रह्मवि० यो० अगस्त्यराघवसंवादे भाषाटीकायां वैराग्योपदेशो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

अगस्त्य उवाच ।

न गृह्णाति वचः पथ्यं कामक्रोधादिपीडितः ॥
हितं न रोचते तस्य मुमूर्षोरिव भेषजम् ॥ १ ॥

अगस्त्यजी बोले—कामक्रोधादिसे पीडित हो मनुष्य हितकारी वचन नहीं सुनता, उसको हितकारी वचन ऐसे अच्छे नहीं लगते जैसे मरणशीलको औषधि अच्छी नहीं लगती ॥ १ ॥

मध्येसमुद्रं या नीता सीता दैत्येन मायिना ॥
आयास्यति नरश्रेष्ठ सा कथं तव संनिधिम् ॥ २ ॥

जिस सीताको मायावी दैत्य सागरके बीचमें ले गया है, हे राम! वह तुम्हारे निकट अब किस प्रकारसे आसकती है २ ॥

बध्यन्ते देवताः सर्वा द्वारि मर्कटयूथवत् ॥
किं च चामरधारिण्यो यस्य सन्ति सुराङ्गनाः ॥ ३ ॥

जिसके द्वारपर वानरोंके यूथोंके समान सब देवता बांधलिये गये हैं। देवताओंकी स्त्री जिसके यहां चमर ढोरती हैं ॥ ३ ॥

भुंक्ते त्रिलोकीमखिलां यः शंभुवरदर्पितः ॥
निष्कण्टकं तस्य जयः कथं तव भविष्यति॥४॥

जो शिवजीके वरसे गर्वित हो सम्पूर्ण त्रिलोकीको भोगता है और भय रहित है उसे तुम कैसे जीतोगे ॥ ४ ॥

इन्द्रजिन्नाम पुत्रो यस्तस्यास्तीशवरोद्धतः ॥
तस्याग्रे सङ्गरे देवा बहुवारं पलायिताः ॥ ५ ॥

इन्द्रजित भी उसका पुत्र शिवके वरदानसे गर्वित है उसके आगेसे देवता संग्राममें बहुतवार भाग गये हैं ॥ ५ ॥

कुम्भकर्णाह्वयो भ्राता यस्यास्ति सुरसूदनः ॥
अन्यो दिव्यास्त्रसंयुक्तश्चिरंजीवी विभीषणः ॥ ६ ॥

देवताओंको भय देनेवाला जिसका भाई कुम्भकर्ण बडा भयंकर है और अनेक प्रकार दिव्यास्त्र धारण करनेवाला चिरजीवी विभीषण है ॥ ६ ॥

दुर्गं यस्यास्ति लङ्काख्यं दुर्जयं देवदानवैः ॥
चतुरङ्गबलं यस्य वर्तते कोटिसंख्यया ॥ ७ ॥

देव और दानवोंको दुर्गम जिसका लंकानाम दुर्ग है, और करोडों जिसके यहां चतुरंगिणी सेना हैं ॥ ७ ॥

एकाकिना त्वया जेयः स कथं नृपनन्दन ॥
आकांक्षते करे धर्तुं बालश्चन्द्रमसं यथा ॥
तथा त्वं काममोहेन जयं तस्याभिवाञ्छसि ॥ ८ ॥

हे राजन् ! फिर इकले तुम उसे कैसे जीतोगे, तुम्हारी यह बात ऐसी है, कि जैसे कोई बालक चन्द्रमाको हाथसे लेना चाहे इसी प्रकार तुम कामसे मोहित होकर उसके जीतनेकी इच्छा करते हो ॥ ८ ॥

श्रीराम उवाच ।

क्षत्रियोऽहं मुनिश्रेष्ठ भार्या मे रक्षसा हृता ॥
यदि तं न निहन्म्याशु जीवने मेऽस्ति किं फलम् ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुनिश्रेष्ठ ! मैं क्षत्रिय हूँ और मेरी भार्या राक्षसने हरण करली है, जो मैं उसे न मारूंगा तो मेरे जीनेसे क्या फल है ॥ ९ ॥

अतस्ते तत्त्वबोधेन न मे किंचित्प्रयोजनम् ॥
कामक्रोधादयः सर्वे दहन्त्येते तनुं मम ॥ १० ॥

इस कारण तुम्हारे तत्त्वबोधसे मुझे कुछभी प्रयोजन नहीं है, यह कामक्रोधादिक मेरे शरीरको भस्म किये डालते हैं ॥ १० ॥

अहंकारोऽपि मे नित्यं जीवनं हन्तुमुद्यतः ॥
हृतायां निजकान्तायां शत्रुणाऽवमतस्य वै ॥ ११ ॥

और अपनी प्रियाके हरण होने और शत्रुसे पराभव होनेसे अहंकारभी नित्य मेरे जीवनको हरण करनेको उद्यत है ॥ ११ ॥

यस्य तत्त्वहृभुतसा स्यात्स लोके पुरुषाधमः ॥
तस्मात्तस्य वधोपायं लंघयित्वाम्बुधिं रणे ॥ ब्रूहि मे
मुनिशार्दूल त्वत्तो नान्योऽस्ति मे गुरुः ॥ १२ ॥

हे मुनिश्रेष्ठ! जिसको तत्त्वज्ञानकी इच्छा हो वह लोकके पुरुषोंमें नीच है। इस कारण सागर लंघकर युद्धमें उसके मारनेके उपायको आप कहिये आपसे श्रेष्ठ और कोई मेरा गुरु नहीं है॥

अगस्त्य उवाच ।

एवं चेच्छरणं याहि पार्वतीपतिमव्ययम् ॥
स चेत्प्रसन्नो भगवान्वाञ्छितार्थं प्रदास्यति॥१३॥

अगस्त्यजी बोले—जो ऐसी इच्छा है, तो पार्वतीके पति शिव अविनाशीकी शरणमें जाओ, वह भगवान् प्रसन्न होकर तुमको मनवांछित फल देंगे ॥ १३ ॥

देवैरजेयः शक्राद्यैर्हरिणा ब्रह्मणापि वा ॥
स ते वध्यः कथं वा स्याच्छंकरानुग्रहं विना॥१४॥

इन्द्रादि देवता हरि और ब्रह्माभी जिसको नहीं जीत सकते वह शिवजीके अनुग्रह विना तुमसे कैसे मारा जायगा ॥ १४ ॥

अतस्त्वां दीक्षयिष्यामि विरजामार्गमाश्रितः ॥
तेन मार्गेण मर्त्यत्वं हित्वा तेजोमयो भव । १५॥

इस कारण विरजामार्गसे मैं तुमको दीक्षा देता हूँ इस मार्गसे तुम मनुष्यपन छोडकर तेजोमय होजाओगे ॥ १५ ॥

येन हत्वा रणे शत्रून्सर्वान्कामानवाप्स्यसि ॥
भुक्त्वा भूमण्डले चान्ते शिवसायुज्यमाप्स्यसि॥

जिसके प्रतापसे युद्धमें शत्रुओंको मारकर सम्पूर्ण कामनाओंको प्राप्त होजाओगे और संपूर्ण धरामंडलको भोगकर अन्तमें शिवलोकको आओगे ॥ १६ ॥

सूत उवाच ।

अथ प्रणम्य रामस्तं दण्डवन्मुनिसत्तमम् ॥
उवाच दुःखनिर्मुक्तः प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ १७ ॥

सूतजी बोले—तब रामचन्द्रजी मुनिश्रेष्ठको दंडवत् प्रणाम करके दुःख त्याग प्रसन्नमन हो बोले ॥ १७ ॥

श्रीराम उवाच ।

कृतार्थोऽहं मुने जातो वाञ्छितार्थो ममागतः ॥
पीताम्बुधिः प्रसन्नस्त्वं यदि मे किमु दुर्लभम् ॥
अतस्त्वं विरजां दीक्षां देहि मे मुनिसत्तम ॥ १८ ॥

श्रीरामचन्द्रजी बोले—हे मुने ! मैं कृतार्थ होगया, मेरे कार्य सिद्ध होगये जब समुद्र पीनेवाले आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो तो मुझे क्या दुर्लभ है । इस कारण हे मुनिश्रेष्ठ ! आप मुझसे विरजादीक्षाकी विधि कहिये ॥ १८ ॥

अगस्त्य उवाच ।

शुक्लपक्षे चतुर्दश्यामष्टम्यां वा विशेषतः ॥
एकादश्यां सोमवारे आर्द्रायां वा समारभेत् १९॥

अगस्त्यजी बोले शुक्लपक्षकी चौदस अष्टमी वा एकादशी सोमवार अथवा आर्द्रा नक्षत्रमें यह कार्य आरंभ करना ॥ १९ ॥

यं वायुमाहुर्यं रुद्रं यमाग्निं परमेश्वरम् ॥
परात्परतरं चाहुः परात्परतरं शिवम् ॥ २० ॥

जिनको वायुश्रेष्ठ, रुद्र, अग्नि, परमेश्वर, निरंतर जगत्के नियंता सर्वश्रेष्ठ, ब्रह्मादिकोंसे भी परे शिव कहते हैं ॥ २० ॥

ब्रह्मणो जनकं विष्णोर्वह्नेर्वायोः सदाशिवम् ॥
ध्यात्वाऽग्निनाऽवसथ्याग्निं विशोध्य च पृथक्पृथक् २१

जो ब्रह्मा, विष्णु, अग्नि, वायु इनकेभी उत्पन्न करनेवाले हैं इस प्रकार सदाशिवका ध्यान करके, अग्निबीजसे गृहाग्निका ध्यान कर देह उत्पत्तिके कारणभूत जो पंचमहाभूत हैं वह वायुबीजसे पृथक् पृथक् हैं इस प्रकार भावना करके ॥ २१ ॥

पञ्चभूतानि संयम्य ध्यात्वा गुणविधिक्रमात् ॥
मात्राः पञ्च चतस्रश्च त्रिमात्राद्विस्ततःपरम् ॥ २२ ॥
एकमात्रममात्रं हि द्वादशान्तं व्यवस्थितम् ॥
स्थित्यां स्थाप्यामृतो भूत्वा व्रतं पाशुपतं चरेत् २३

उन महाभूतोंके गुणका क्रमसे ध्यान करे कि, गृहाग्निसे दग्ध होनेवाली भावना करावै, उसका प्रकार मात्रा अर्थात् पंच महाभूतोंके गुण—रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द यह पांच हैं। पृथ्वीमें पांचही गुण रहते हैं, जलमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस यह चार, तेजमें शब्द, स्पर्श, रूप यह तीन, वायुमें शब्द और स्पर्श यह दो और आकाशमें शब्द यह एकही गुण है। इसकी उत्पत्तिका क्रम आकाशसे वायु, वायुसे तेज, तेजसे जल, जलसे पृथ्वी उत्पन्न होती है और इससे विपरीत अर्थात् पृथ्वी जलमें, जल तेजमें, तेज वायुमें, वायु आकाशमें लय

होजाता है । अधिक अधिक गुणके भूत न्यूनन्यून गुणवाले भूतोंमें लय हो जाते हैं, और इन सबकी अमात्रा जिसका गुण नहीं, उन अहंकारादिकोंको लय करै अर्थात् पंच-महाभूतोंका अहंकारमें, अहंकारका महत्तत्त्वमें, महत्तत्त्वका मायामें, मायाका सबसे आधारभूत परमात्मामें लय करे । फिर अमृतबीजसे लयके विपरीत क्रम करके यह देहोत्पत्ति विषयमें प्रवृत्त है ऐसी भावना करके मैं दिव्यदेह हूं और पूर्व-देहके उत्पन्न करनेहारे सब गुण और द्रव्यका अग्निबीजसे दाह करके उसका परमात्मामें लय करके अमृतबीजसे पुन-रुज्जीवन करके यह देह अमृत और दिव्य है ऐसी भावना करै । इस प्रकार भूतशुद्धि करके पाशुपतव्रतका आरंभ करै ॥ २२ ॥ २३ ॥

इदं व्रतं पाशुपतं करिष्यामि समासतः ॥
प्रातरेवं तु संकल्प्य निधायाग्निं स्वशाखया॥२४॥

फिर प्रातःकालही मैं पाशुपतव्रतको करूंगा ऐसा संक्षेपसे संकल्प करके अपनी शाखा तथा गृह्यसूत्रसे अग्नि स्थापन करे ॥ २४ ॥

उपोषितः शुचिः स्नातः शुक्लाम्बरधरः स्वयम् ॥
शुक्लयज्ञोपवीतश्च शुक्लमाल्यानुलेपनः ॥ २५ ॥

उसी दिन व्रत रहकर पवित्र हो श्वेतवस्त्र धारण करे, शुक्ल यज्ञोपवीत और शुक्लमाला पहरे ॥ २५ ॥

जुहुयाद्विरजामन्त्रैः प्राणापानादिभिस्ततः ॥
अनुवाकान्तमेकाग्रः समिदाज्यचरून्पृथक् ॥२६॥

अन्तःकरण एकाग्र कर (प्राणापानव्यानोदानसमाना मे शुद्ध्यन्ताम्) तथा (ज्योतिरहं विरजा विपाप्मा भूयासं स्वाहा) इत्यादि विरजामंत्रके अनुवाकपर्यन्त समिधा, आज्य और चरुसे हवन करै ॥ २६ ॥

आत्मन्यग्निं समारोप्य याते अग्नेति मन्त्रतः ॥
भस्मादायाग्निरित्याद्यैर्विमृज्याङ्गानि संस्पृशेत् २७

हवनके अनन्तर (याते अग्नेयज्ञियातनूः) इस मंत्रसे अग्निको आत्मामें आरोपण करके अग्निके भस्मको (अग्निरितिभस्मे-त्यादि)मंत्रोंसे अभिमंत्रित कर ललाटादि अंगोंमें धारण करे २७

भस्मच्छन्नो भवेद्विद्वान्महापातकसंभवैः ॥
पापैर्विमुच्यते सत्यमुच्यते च न संशयः ॥ २८ ॥

जिस ब्राह्मणके शरीरमें भस्म लगी होती है, वह महापातकोंसे भी छूट जाता है इसमें संदेह नहीं ॥ २८ ॥

वीर्यमग्नेर्यतो भस्म वीर्यवान्भस्मसंयुतः ॥
भस्मस्नानरतो विप्रो भस्मशायी जितेन्द्रियः२९॥

जिस कारणसे कि, भस्म अग्निका वीर्य है, मैं भी अग्निवीर्यके धारण करनेसे बलवान् हो जाऊंगा। इस प्रकार जो नित्य भस्म स्नान करता तथा जितेन्द्रिय हो भस्मपर शयन करता है ॥२९॥

सर्वपापविनिर्मुक्तः शिवसायुज्यमाप्नुयात् ॥

एवं कुरु महाभाग शिवनामसहस्रकम् ॥
इदं तु संप्रदास्यामि तेन सर्वार्थमाप्स्यसि ॥ ३० ॥

वह सब पापसे मुक्त होकर शिवलोकको प्राप्त होता है । हे राजन् ! तुम इस प्रकार करो और शिवसहस्रनाम में तुमको देता हूं इससे तुम्हारे सब मनोरथ पूर्ण होंगे ॥ ३० ॥

सूत उवाच ।

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै शिवनामसहस्रकम् ॥ ३१ ॥

सूतजी बोले-ऐसा कहकर अगस्त्यजीने रामचन्द्रको शिवसहस्रनामका उपदेश किया ॥ ३१ ॥

वेदसाराभिधं नित्यं शिवप्रत्यक्षकारकम् ॥
उक्तं च तेन राम त्वं जप नित्यं दिवानिशम् ॥ ३२ ॥

जो कि सब वेदोंका सार है, जो शिवजीका प्रत्यक्ष करनेवाला है उसको देकर अगस्त्यजीने कहा हे राम ! तुम इसे दिनरात जपो ॥ ३२ ॥

ततः प्रसन्नो भगवान्महापाशुपतास्त्रकम् ॥ तुभ्यं दास्यति तेन त्वं शत्रून्हत्वाप्स्यसि प्रियाम् ॥ ३३ ॥

तब भगवान् शिवजी प्रसन्न होकर पाशुपत अस्त्र तुमको देंगे जिससे तुम शत्रुओंको मारकर प्रियाको प्राप्त होगे ॥ ३३ ॥

तस्यैवास्त्रस्य माहात्म्यात्समुद्रं शोषयिष्यसि ॥
संहारकाले जगतामस्त्रं तत्पार्श्वतोपतेः ॥ ३४ ॥

उसी अस्त्रके प्रभावसे सागरको शोष सकोगे संहार कालमें शिवजी इसही अस्त्रसे जगत्को संहार करते हैं ॥ ३४ ॥

तदलाभे दानवानां जयस्तव सुदुर्लभः ॥
तस्माल्लब्धुं तदेवास्त्रं शरणं याहि शङ्करम् ॥३५॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे अगस्त्यराघवसंवादे विरजादीक्षा-निरूपणं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

उसके विना पाये दानवोंसे जय पाना बडा दुर्लभ है। इस कारण इस अस्त्रके पानेके निमित्त शिवजीकी शरण जाओ ॥ ३५ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे० शिवगीता अगस्त्यराघवसंवादे पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

सूत उवाच ।

एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठे गते तस्मिन्निजाश्रमम् ॥
अथ रामगिरौ रामस्तस्मिन्गोदावरीतटे ॥ १ ॥

सूतजी बोले—अगस्त्यजी जब ऐसा कहकर आश्रमको चले गये तब रामगिरिके ऊपर गोदावरीके पवित्र आश्रममें रामचंद्र॥

शिवलिङ्गं प्रतिष्ठाप्य कृत्वा दीक्षां यथाविधि ॥
भूतिभूषितसर्वाङ्गो रुद्राक्षाभरणैर्युतः ॥ २ ॥

शिवलिंगको स्थापनकर अगस्त्यजीके उपदेशानुसार विरजा दीक्षा ले सर्वांगमें विभूति लगाय रुद्राक्षके आभरण पहर ॥२॥

अभिषिच्य जलैः पुण्यैर्गौतमीसिन्धुसम्भवैः ॥
अर्चयित्वा वन्यपुष्पैस्तद्वद्वन्यफलैरपि ॥ ३ ॥

शिवलिंगको गोदावरीके पवित्र जलोंसे अभिषेकित कर वनके उत्पन्न हुए फूलों और फलोंसे उनका पूजन कर ॥ ३ ॥

भस्मच्छन्नो भस्मशायी व्याघ्रचर्मासने स्थितः ॥
नाम्नां सहस्रं प्रजपन्नक्तं दिवमनन्यधीः ॥ ४ ॥

भस्म लगाये भस्मपरही शयन करते व्याघ्रचर्मके आसनपर बैठे रातदिन अनन्य बुद्धिकर शिवसहस्रनाम जपने लगे ॥४॥

मासमेकं फलाहारो मासं पर्णाशनः स्थितः ॥
मासमेकं जलाहारो मासं च पवनाशनः ॥ ५ ॥

एक महीनेतक फलहार, एक महीनेतक पत्तोंका भोजन, एक महीना जलपान और एक महीना पवनको आहार कर रहे ॥ ५ ॥

शान्तो दान्तः प्रसन्नात्मा ध्यायन्नेवं महेश्वरम् ॥
हृत्पङ्कजे समासीनमुमादेहार्धधारिणम् ॥ ६ ॥

शान्त अन्तःकरण, इन्द्रियोंको जीते, प्रसन्न मन, महेश्वरका ध्यान किये, हृदयकमलमें विराजमान, अर्द्धांगमें पार्वतीको धारण किये ॥ ६ ॥

चतुर्भुजं त्रिनयनं विद्युत्पिङ्गजटाधरम् ॥
कोटिसूर्यप्रतीकाशं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥ ७ ॥

चार भुजा तीन नेत्र बिजलीकी समान पीली जटा धारे करोडों सूर्यके समान प्रकाशमान कोटि चन्द्रमाके समान शीतल ॥ ७ ॥

सर्वाभरणसंयुक्तं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥
व्याघ्रचर्माम्बरधरं वरदाभयधारिणम् ॥ ८ ॥

सम्पूर्ण गहने पहरे, सर्पोंका यज्ञोपवीत, व्याघ्रचर्म ओढे, भक्तोंके अभयदाता, वरदायक मुद्रा धारे ॥ ८ ॥

व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च सुरासुरनमस्कृतम् ॥
पञ्चवक्त्रं चन्द्रमौलिं त्रिशूलडमरूधरम् ॥ ९ ॥

व्याघ्रचर्मकाही उत्तरीय (दुपट्टा,) ओढे, देवता और असुरोंसे नमस्कार पाये, पंचमुख चन्द्रमा मस्तकपर धारे, त्रिशूल और डमरू लिये ॥ ९ ॥

नित्यं च शाश्वतं शुद्धं ध्रुवमक्षरमव्ययम् ॥
एवं नित्यं प्रजपतो गतं मासचतुष्टयम् ॥ १० ॥

नित्य अविनाशी शुद्ध अक्षय निर्विकार एकरूप, शिवजीका इस प्रकार नित्य ध्यान करते चार महीने वीतगये ॥ १० ॥

अथ जातो महान्नादः प्रलयाम्बुदभीषणः ॥
समुद्रमथनोद्भूतमन्दरावनिभृद्ध्वनिः ॥ ११ ॥

तब प्रलयकालिक समुद्रके समान भयंकर शब्द प्रकट हुआ जिस प्रकारसे समुद्र मथनके समय मन्दराचलके विलोनेसे ध्वनि उठी थी ॥ ११ ॥

रुद्रबाणाग्निसंदीप्तभ्रश्यत्त्रिपुरविभ्रमः ॥
तमाकर्ण्याथ संभ्रान्तो यावत्पश्यति पुष्करम् ॥ १२ ॥

त्रिपुरासुरके जलानेके समय शिवजीके बाणकी अग्निके समान भयंकर महाशब्द सुनकर रामचंद्र चकित हो जबतक गोदावरीके तटोंकी ओर दृष्टि करते हैं ॥ १२ ॥

तावदेव महातेजा रामस्याग्रीत्पुरो द्विजः ।
तेजसा तेन संभ्रान्तो नापश्यत्स दिशो दश ॥ १३ ॥

तबतक भयंकर महातेजःपुञ्ज विप्र रामचन्द्रके आगे उपस्थित हुआ, उसी तेजसे चकित हो रामचन्द्रका दशोंदिशा न सूझी ॥ १३ ॥

अन्धीकृतेक्षणस्तूर्णं मोहं यातो नृपात्मजः ॥
विचिन्त्य तर्कयामास दैत्यमायां द्विजेश्वर ॥ १४ ॥

हे द्विजश्रेष्ठ ! आंखें मिच जानेसे राजकुमार मोहको प्राप्त हो गये और विचार करके जाना कि यह दैत्योंकी माया है ॥ १४ ॥

अथोत्थाय महावीरः सज्यं कृत्वा स्वकं धनुः ।
अविध्यन्निशितैर्बाणैर्दिव्यास्त्रैरभिमन्त्रितैः ॥ १५ ॥

फिर वह महावीर उठकर और अपने बडे धनुष्यको चढाकर तथा दिव्य मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित कर तीक्ष्ण बाणोंपर दृष्टि करने लगें ॥ १५ ॥

आग्नेयं वारुणं सौम्यं मोहनं सौरपार्वतम् ॥
विष्णुचक्रं महाचक्रं कालचक्रं च वैष्णवम् ॥ १६ ॥

आग्नेयास्त्र, वरुणास्त्र, सोमास्त्र, मोहनास्त्र, सूर्यास्त्र, पर्वतास्त्र, सुदर्शनास्त्र, महाचक्र, कालचक्र, वैष्णवास्त्र ॥ १६ ॥

रौद्रं पाशुपतं ब्राह्मं कौबेरं कुलिशानिलम् ॥
भार्गवादिबहून्यस्त्राण्ययं प्रायुंक्त राघवः ॥ १७ ॥

रुद्रास्त्र, पाशुपतास्त्र, ब्रह्मास्त्र, कुबेरास्त्र, वज्रास्त्र, वायव्यास्त्र और परशुरामास्त्र इत्यादि अनेक मन्त्रोंका रामने प्रयोग किया ॥ १७ ॥

तस्मिंस्तेजसि शस्त्राणि चास्त्राण्यस्य महीपतेः ॥
विलीनानि महाभ्रस्य करका इव नीरधौ ॥ १८ ॥

परन्तु उस महातेजमें वे रामचंद्रके अस्त्र और शस्त्र इस प्रकार लीन होगये जैसे समुद्रमें पत्थर और ओले मग्न होजातेहैं ॥ १८ ॥

ततः क्षणेन जज्वाल धनुस्तस्य कराच्च्युतम् ॥
तूणीरं चांगुलित्राणं गोधिकापि महीपतेः ॥ १९ ॥

तब एक क्षणमात्रमें धनुष जलकर रामचन्द्रके हाथसे गिरा फिर तरकस अंगुलित्राण (जो अंगुलियोंमें पहरते हैं) गोधा जो प्रत्यञ्चके आघातसे रक्षा करता है (यह चर्मके बने होते हैं) जलकर गिर पडे ॥ १९ ॥

तद्दृष्ट्वा लक्ष्मणो भीतः पपात भुवि मूर्छितः ॥
अथाकिञ्चित्करो रामो जानुभ्यामवनिं गतः ॥ २० ॥

यह देखकर लक्ष्मण भयभीत और मूर्छित हो पृथ्वीमें गिरे और रामचंद्र भी निस्तब्ध हो केवल घुटनेसे पृथ्वीमें बैठ गये ॥ २० ॥

मीलिताक्षो भयाविष्टः शङ्करं शरणं गतः ॥
स्वरेणाप्युच्चरन्नुच्चैः शंभोर्नामसहस्रकम् ॥ २१ ॥

और आँखे मीचे भयभीत हो शंकरकी शरणको प्राप्त हुए और उच्चस्वरसे शिवसहस्रनामका जप करने लगे ॥ २१ ॥

शिवं च दण्डवद्भूमौ प्रणनाम पुनः पुनः ॥
पुनश्च पूर्ववच्चासीच्छब्दो दिङ्मण्डलं ग्रसन् ॥ २२ ॥

और शिवजीका पृथ्वीमें दण्डप्रणाम वारंवार किया फिर भी प्रथमके समान दिङ्मण्डलको शब्दायमान करनेवाला शब्द हुआ ॥ २२ ॥

चचाल वसुधा घोरं पर्वताश्च चकम्पिरे ॥
ततः क्षणेन शीतांशुशीतलं तेज आपतत् ॥ २३ ॥

उस घोर शब्दसे पृथ्वी चलायमान और पर्वत कम्पित हुए तब फिर क्षणमात्रमें वह तेज चंद्रमाके समान शीतल हुआ ॥ २३ ॥

उन्मीलिताक्षो रामस्तु यावदेतत्प्रपश्यति ॥
तावद्ददर्श वृषभं सर्वालङ्कारसंयुतम् ॥ २४ ॥

जितनेमें रामचन्द्र नेत्र खोलकर देखते हैं तबतकही उन्होंने सम्पूर्ण भूषण धारण किये वृषभका दर्शन किया ॥ २४ ॥

पीयूषमथनोद्भूतनवनीतस्य पिण्डवत् ॥
प्रोतस्वर्णं मरकतच्छायशृङ्गद्वयान्वितम् ॥ २५ ॥

जिसका रंग अमृतके मथनेसे उत्पन्न हुए मक्खनके पिंडकी नाई श्वेत है, जिसके शृंगाग्रमें सुवर्णमें बँधी मरकतमणि शोभित होती है ॥ २५ ॥

नीलरत्नेक्षणं ह्रस्वकण्ठकम्बलभूषितम् ॥
रत्नपल्याणसंयुक्तं निबद्धं श्वेतचामरैः ॥ २६ ॥

नीलमणिके समान नेत्र ह्रस्वकण्ठ सास्नासे भूषित रत्नोंकी खोगीरमे शोभित जो कि श्वेत चामरोंसे युक्त है ॥ २६ ॥

घण्टिकाघर्घरीशब्दैः पूरयन्तं दिशो दश ॥
तत्रासीनं महादेवं शुद्धस्फटिकविग्रहम् ॥ २७ ॥

घरघर शब्दवाली घंटिकाओंसे दशों दिशाओंको पूर्ण करते हुए वृषभपर चढे स्फटिक मणिके समान शुभ्रकांति महादेवजी ॥ २७ ॥

कोटिसूर्यप्रतीकाशं कोटिशीतांशुशीतलम् ॥
व्याघ्रचर्माम्बरधरं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥ २८ ॥

जो कि, करोडों सूर्यके समान प्रकाशमान, करोडों चन्द्रमाओंके समान शीतल, व्याघ्रचर्मका वस्त्र धारे, नागोंका यज्ञोपवीत पहरे ॥ २८ ॥

सर्वालङ्कारसंयुक्तं विद्युत्पिङ्गजटाधरम् ॥
नीलकण्ठं व्याघ्रचर्मोत्तरीयं चन्द्रशेखरम् ॥२९॥

सम्पूर्ण अलंकारोंसे युक्त, बिजलीकी समान पीली जटा धारे, नीलकण्ठ, व्याघ्रका चर्म ओढे, चन्द्रमा मस्तकपर विराजमान ॥ २९ ॥

नानाविधायुधोद्भासिदशबाहुं त्रिलोचनम् ॥
युवानं पुरुषश्रेष्ठं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ ३० ॥

अनेक प्रकारके शस्त्रोंसे युक्त, दश बाहु, तीन नेत्र, युवावस्था, पुरुषोंमें श्रेष्ठ, सच्चिदानन्दस्वरूप ॥ ३० ॥

तत्रैव च सुखासीनां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ॥
नीलेन्दीवरदामाभामुद्यन्मरकतप्रभाम् ॥ ३१ ॥

तथा निकट बैठी हुई पूर्ण चंद्रमुखी, नीलकमलके समान अथवा मरकत मणिके समान सुन्दर शरीरवाली ॥ ३१ ॥

मुक्ताभरणसंयुक्तां रात्रिं ताराञ्चितामिव ॥
विन्ध्यक्षितिधरोत्तुङ्गकुचभारभरालसाम् ॥३२॥

मोतियोंके आभरणोंसे युक्त, तारोंसे युक्त रात्रिकी समान शोभित, तथा विन्ध्यपर्वतके समान ऊंचे स्तनभारसे नम्र ॥ ३२॥

सदसत्संशयाविष्टमध्यदेशान्तराम्बराम् ॥
दिव्याभरणसंयुक्तां दिव्यगन्धानुलेपनाम् ॥ ३३ ॥

है वा नहीं ऐसे संदिग्ध मध्यभागमें सुंदर है वस्त्र जिसका और दिव्य आभूषणोंसे युक्त, कस्तूरी आदि दिव्यसुगन्ध लगाये ३३

दिव्यमाल्याम्बरधरां नीलेन्दीवरलोचनाम् ॥
अलकोद्भासिवदनां ताम्बूलग्रासशोभिताम् ॥ ३४ ॥

दिव्य माला धारे, नील कमलके समान नेत्र, टेढे केशोंसे शोभित, मुखमें ताम्बूल खानेसे शोभित अधरोष्टवाली ॥ ३४ ॥

शिवालिंगनसञ्जातपुलकोद्भासिविग्रहाम् ॥
सच्चिदानन्दरूपाढ्यां जगन्मातरमंबिकाम् ॥ ३५ ॥

शिवजीके आलिंगनसे उत्पन्न हुए रोमांच शरीरवाली सच्चिदानन्दरूप त्रिलोककी माता ॥ ३९ ॥

सौन्दर्यसारसन्दोहां ददर्श रघुनन्दनः ॥
स्वस्ववाहनसंयुक्तान्नानायुधलसत्करान् ॥ ३६ ॥

सब सुन्दर पदार्थोंके सारकी मूर्तिमान् पात्र पार्वतीको रामचन्द्रने देखा । इसी प्रकार अपने अपने वाहनपर चढे आयुध हाथमें लिये ॥ ३६ ॥

बृहद्रथन्तरादीनि सामानि परिगायतः ॥ स्वस्वकान्तासमायुक्तान्दिक्पालान्परितः स्थिता ॥ ३८ ॥

बृहद्रथन्तरादि सामगायन करते अपनी अपनी स्त्रियोंसे युक्त इन्द्रादिदिक्पालोंसे सेवित ॥ ३७ ॥

अग्रगं गरुडारूढं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ कालाम्बुदप्रतीकाशं विद्युत्कान्त्या श्रिया युतम् ॥ ३८ ॥

और सबसे आगे गरुडपर चढे, शंख, चक्र, गदा और

पल वाले, नील मेघके समान शरीरधारी, बिजलीकी समान कान्तिमान्, लक्ष्मीसे युक्त ॥ ३८ ॥

जपन्तमेकमनसा रुद्राध्यायं जनार्दनम् ॥
पश्चाच्चतुर्मुखं देवं ब्रह्माणं हंसवाहनम् ॥ ३९ ॥

एकाग्र चित्तसे रुद्राध्यायका पाठ करते हुए जनार्दन और पीछे हंसपर चढे हुए चतुर्मुख ब्रह्माजी ॥ ३९ ॥

चतुर्वक्त्रैश्चतुर्वेदरुद्रसूक्तैर्महेश्वरम् ॥
स्तुवन्तं भारतीयुक्तं दीर्घकूर्चं जटाधरम् ॥ ४० ॥

चारों मुखोंसे ऋक्, यजुः, साम और अथर्व इन चारों वेद तथा रुद्रसूक्तका जप करते बडी डाढी और जटा धारण किये सरस्वती सहित महेश्वरकी स्तुति करते ॥ ४० ॥

अथर्वशिरसा देवं स्तुवन्तं मुनिमण्डलम् ॥
गङ्गादितटिनीयुक्तमम्बुधिं नीलविग्रहम् ॥ ४१ ॥

इसी प्रकार अथर्वशीर्षके मंत्रोंसे स्तुति करते हुए मुनि और गंगादि नदियोंसे युक्त नीलवर्ण सागर ॥ ४१ ॥

श्वेताश्वतरमन्त्रेण स्तुवन्तं गिरिजापतिम् ॥
अनन्तादिमहानागान्कैलासगिरिसन्निभान् ॥ ४२ ॥

श्वेताश्वतरके मंत्रोंसे शिवजीकी स्तुति करते कैलास पर्वतके समान अनन्तादि महानाग ॥ ४२ ॥

कैवल्योपनिषत्पाठान्मणिरत्नविभूषितान् ॥
सुवर्णवेत्रहस्ताढ्यं नन्दिनं पुरतः स्थितम् ॥ ४३ ॥

स्तनोंसे विभूषित कैवल्य उपनिषत् पाठ करनेहारे स्तुति कर रहे हैं और सुवर्णकी छड़ी हाथमें लिये नंदीके आगे स्थित हुए ॥ ४३ ॥

दक्षिणे मूषकारूढं गणेशं पर्वतोपमम् ॥
मयूरवाहनारूढमुत्तरे षण्मुखं तथा ॥ ४४ ॥

दक्षिणकी ओर पर्वतके समान मूषकपर चढे गणेशजी और उत्तरकी ओर मयूरपर चढे कार्तिकेय ॥ ४४ ॥

महाकालं च चण्डेशं पार्श्वयोर्भीषणाकृतिम् ॥
कालाग्निरुद्रं दूरस्थं ज्वलद्दावाग्निसन्निभम् ॥४५॥

महाकाल और चण्डेश्वर पार्षदगण सेनानायक भयंकर मूर्ति धारे इधर उधर स्थित दावाग्निके समान दीप्तिमान दूर स्थित कालाग्नि रुद्र ॥ ४५ ॥

त्रिपादं कुटिलाकारं नटद्भृंगिरिटिं पुनः ॥
नानाविकारवदनान्कोटिशः प्रमथाधिपान् ॥४६॥

तीन चरण हैं जिसके और कुटिल मूर्तिवाले प्रमथ गण तथा उनके अग्रभागमें नृत्य करनेवाले भृंगिरिटि ऐसे मूर्तिवाले करोडों प्रमथगण ॥ ४६ ॥

नानावाहनसंयुक्तं परितो मातृमण्डलम् ॥
पञ्चाक्षरीजपासक्तान्सिद्धविद्याधरादिकान् ॥ ४७ ॥

और अनेक प्रकारके वाहनोंपर स्थित चारों ओर मातृमण्डल और पञ्चाक्षरी विद्या जपनेमें तत्पर सिद्ध विद्याधरादिक ॥४७॥

दिव्यरुद्रकगीतानि गायत्किन्नरवृन्दकम् ॥
तत्र त्रैयम्बकं मन्त्रं जपद्द्विजकदम्बकम् ॥ ४८ ॥

और दिव्य गीत गाते हुए किन्नरोंके समूह और (त्र्यंबकं यजामहे) इस मंत्रको जपनेहारे ब्राह्मणोंके समूह ॥ ४८ ॥

गायन्तं वीणया गीतं नृत्यन्तं नारदं दिवि ॥
नृत्यतो नाट्यनृत्येन रम्भादीनप्सरोगणान् ॥ ४९ ॥

आकाशमें वीणा बजाकर गाते और नाचते हुए नारद और नाट्यकी विधिसे नृत्य करते हुए रम्भादिक अप्सराओंके झुंड ॥

गायच्चित्ररथादीनां गन्धर्वाणां कदम्बकम् ॥
कम्बलाश्वतरौ शंभुकर्णभूषणतां गतौ ॥ ५० ॥

और गानेमें तत्पर चित्ररथादि गन्धर्वोंके समूह तथा शिवजीके कानोंमें कुण्डलताको प्राप्त हुए कम्बल और अश्वतर नाग ५० ॥

गायन्तौ पन्नगौ गीतं कपालं कम्बलं तथा ॥
एवं देवसभां दृष्ट्वा कृतार्थो रघुनन्दनः ॥ ५१ ॥

तथा गीत गानेमें तत्पर कंबल और अश्वतर (कपाल) नागोंसे शोभित सब देवसभाको देखकर रामचन्द्र कृतार्थ हुए ॥ ५१ ॥

हर्षगद्गदया वाचा स्तुवन्देवं महेश्वरम् ॥
दिव्यनामसहस्रेण प्रणनाम पुनःपुनः ॥ ५२ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे शिवप्रादुर्भावाख्यश्चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

और हर्षसे गद्गदकण्ठ हो शिवजीकी स्तुति औ दिव्य सहस्रनामके उच्चारणसे वारंवार प्रमाण करने लगे ॥ ९१ ॥

इति श्रीपद्मपुराणान्तर्गतशिवगीतायां पं० ज्वालाप्रसाद-
मिश्रकृतभाषाटीकायां शिवप्रादुर्भावो नाम
चतुर्थोऽध्याय ॥ ४ ॥

सूत उवाच ।

अथ प्रादुरभूत्तत्र हिरण्मयरथो महान् ॥
अनेकदिव्यरत्नांशुकिर्मीरितदिगन्तरः ॥ १ ॥

श्रीसूतजी बोले–इसके उपरान्त उस स्थानमें एक सुवर्णका बडा रथ प्रादुर्भूत हुआ जिसकी अनेक रत्नोंकी कांतिसे सब दिशा चित्र विचित्र होगयी थीं ॥ १ ॥

नद्युपान्तिकपङ्काढ्यमहाचक्रचतुष्टयः ॥
मुक्तातोरणसंयुक्तः श्वेतच्छत्रशतावृतः ॥ २ ॥

नदीके किनारेकी पंकमें जिसके चारों चक्र स्थित थे, मोतियोंकी झालर और सैकडों श्वेत छत्रसे युक्त ॥ २ ॥

शुद्धहेमखलीनाढ्यचतुरङ्गगणसंयुतः ॥
मुक्तावितानविलसदूर्ध्वदिव्यवृषध्वजः ॥ ३ ॥

सुवर्णके खुर मढे हुए चार घोडोंसे शोभित मोतियोंकी झालर और चन्दोवेसे शोभायमान जिसकी ध्वजामें वृषभका चिह्न था ॥ ३ ॥

मत्तवारणिकायुक्तः पट्टतल्पोपशोभितः ॥
पारिजाततरूद्भूतपुष्पमालाभिरञ्चितः ॥ ४ ॥

जिसके निकट एक मत्त हस्तिनी चलती थी, जिसपर रेशमकी गद्दियां बिछायी थीं, पांच भूतोंके अधिष्ठाता देवताओंसे शोभित पारिजात कल्पवृक्षके फूलोंकी मालाओंसे सज्जित ॥ ४ ॥

मृगनाभिसमुद्भूतकस्तूरीमदपंकिलः ॥
कर्पूरागरुधूपोत्थगन्धाकृष्टमधुव्रतः ॥ ५ ॥

मृगनाभिसे उत्पन्न हुई कस्तूरीके मदवाला कपूर और अगर धूपकी उठी हुई गंधसे भौरोंको आकर्षण करनेवाला ॥ ५ ॥

संवर्तघनघोषाढ्यो नानावाद्यसमन्वितः ॥
वीणावेणुस्वनासक्तकिन्नरीगणसङ्कुलः ॥ ६ ॥

प्रलयकालके समान शब्दायमान अनेक प्रकारके बाजोंसे युक्त वीणावेणु मधुर बाजे और किन्नरी गणोंसे युक्त ॥ ६ ॥

एवं दृष्ट्वा रथश्रेष्ठं वृषादुत्तीर्य शङ्करः ॥
अम्बया सहितस्तत्र पट्टतल्पेऽविशत्तदा ॥ ७ ॥

इस प्रकारके श्रेष्ठ रथको देखकर वृषभसे उतर शिवजी अम्बीसहित वस्त्रकी शय्यावाले उस रथके स्थानमें प्रविष्टित हुए ॥

नीराजनैः सुरस्त्रीणां श्वेतचामरचालनैः ॥
दिव्यव्यजनपातैश्च प्रहृष्टो नीललोहितः ॥ ८ ॥

उसमें देवांगना श्वेत चमर और व्यजनके चलानेसे शिव-जीको प्रसन्न करने लगीं ॥ ८ ॥

क्वणत्कङ्कणनिध्वानैर्मञ्जुमञ्जीरशिञ्जितैः ॥
वीणावेणुस्वनैर्गीतैः पूर्णमासीज्जगत्त्रयम् ॥ ९ ॥

शब्दायमान कंकणोंकी ध्वनि और निर्मल मंजीरीके शब्द वीणावेणुके गीतसे मानो त्रिलोक पूर्ण हो गया ॥ ९ ॥

शुककेकिकुलारावैः श्वेतपारावतस्वनैः ॥
उन्निद्रभूषाफणिनां दर्शनादेव बर्हिणः ॥
ननृतुर्दर्शयन्तः स्वांश्चन्द्रकान्कोटिसंख्यया ॥ १ ॥

तोतोंके वाक्यकी मधुरता और श्वेत कबूतरोंके शब्दसे जगत् शब्दायमान होगया । प्रसन्नतासे अपने फण उठाये हुए शिवजीके भूषणरूप शरीरमें लिपटे सर्पोंको देखकर करोडों मयूर प्रसन्न हो अपनी चन्द्रका (बर्हनेत्र) दिखावे हुए नृत्य करने लगे ॥ १० ॥

प्रणमन्तं ततो राममुत्थाप्य वृषभध्वजः ॥
आनिनाय रथं दिव्यं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ॥ ११ ॥

तब शिवजी प्रणाम करते हुए रामको उठाकर प्रसन्नमनसे दिव्य रथमें ले आये ॥ ११ ॥

कमण्डलुजलैः स्वच्छैः स्वयमाचम्य यत्नतः ॥
समाचम्याथ पुरतः स्वाङ्के राममुपानयत् ॥ १२ ॥

और अपने दिव्य कमण्डलुके जलसे सावधान हो आचमन-कर रामचन्द्रको आचमन कराय अपनी गोदीमें बैठाया ॥ १२ ॥

अथ दिव्यं धनुस्तस्मै ददौ तूणीरमक्षयम् ॥
महापाशुपतं नाम दिव्यमस्त्रं ददौ ततः ॥ १३ ॥

इसके उपरान्त रामचन्द्रको दिव्य धनुष, अक्षय तरकस और महापाशुपतास्त्र प्रदान किया ॥ १३ ॥

उक्तश्च तेन रामोऽपि सादरं चन्द्रमौलिना ॥
जगन्नाशकरं रौद्रमुग्रमस्त्रमिदं नृप ॥ १४ ॥

और रामचन्द्रसे बोले, हे राम ! यह मेरा उग्र अस्त्र जगत्का नाश करनेवाला है ॥ १४ ॥

अतो नेदं प्रयोक्तव्यं सामान्यसमरादिके ॥
अन्यन्नास्ति प्रतीघातमेतस्य भुवनत्रये ॥ १५ ॥

इस कारण सामान्य युद्धमें इसका प्रयोग नहीं करना इसका निवारण करनेवाला त्रिलोकीमें दूसरा नहीं है ॥ १५ ॥

तस्मात्प्राणात्यये राम प्रयोक्तव्यमुपस्थिते ॥
अन्यदैतत्प्रयुक्तं तु जगत्संक्षयकृद्भवेत् ॥ १६ ॥

इस कारण हे राम ! प्राणसंकट उपस्थित होनेपर इसका प्रयोग करना उचित है, दूसरे समयमें इसका प्रयोग करनेसे जगत्का नाश हो जाता है ॥ १६ ॥

अथाहूय सुरश्रेष्ठाँल्लोकपालान्महेश्वरः ॥
उवाच परमप्रीतः स्वं स्वमस्त्रं प्रयच्छत ॥ १७ ॥

फिर शिवजी देवताओंमें श्रेष्ठ लोकपालोंको मुझसे प्रसन्न मन हो बोले, रामचन्द्रको सब कोई अपने २ अस्त्र दान करो १७

राघवोऽयं च तैरस्त्रै रावणं निहनिष्यति ॥
तस्मै देवैरवध्यत्वमिति दत्तो वरो मया ॥ १८ ॥

यह रामचन्द्र उन अस्त्रोंसे रावणको मारेंगे कारण कि उसको मैंने वर दिया है कि 'तू देवताओंसे न मरेगा' ॥ १८ ॥

तस्माद्वानरतामेत्य भवन्तो युद्धदुर्मदाः ॥
साहाय्यमस्य कुर्वन्तु तेन सुस्था भविष्यथ ॥ १९ ॥

इस कारण तुम सब युद्धमें भयंकर कर्म करनेवाले वानरोंका शरीर धारण करके इनकी सहायता करो इससे तुम सुखी होंगे ॥ १९ ॥

तदाज्ञां शिरसा गृह्य सुराः प्राञ्जलयस्तथा ॥
प्रणम्य चरणौ शंभोः स्वंस्वमस्त्रं ददुर्मुदा ॥ २० ॥

शिवजीकी आज्ञाको शिरपर धर हाथजोड देवताओंने शिवजीके चरणोंमें प्रणामकर अपने २ अस्त्र दिये ॥ २० ॥

नारायणास्त्रं दैत्यारिरैन्द्रमस्त्रं पुरंदरः ॥
ब्रह्मापि ब्रह्मदंडास्त्रमाग्नेयास्त्रं धनंजयः ॥ २१ ॥

विष्णुने नारायणास्त्र, इन्द्रने ऐन्द्रास्त्र, ब्रह्माने ब्रह्मदण्डास्त्र, अग्निने आग्नेयास्त्र दिया ॥ २१ ॥

याम्यं यमोऽपि मोहास्त्रं रक्षोराजस्तथा ददौ ॥
वरुणो वारुणं प्रादाद्वायव्यास्त्रं प्रभंजनः ॥ २२ ॥

यमराजने याम्यास्त्र, निर्ऋतिने मोहनास्त्र, वरुणने वारुणास्त्र, वायुने वायव्यास्त्र ॥ २२ ॥

कौबेरं च कुबेरोऽपि रौद्रमीशान एव च ॥
सौरमस्त्रं ददौ सूर्यः सौम्यं सोमश्च पार्वतम् ॥
विश्वेदेवा ददुस्तस्मै वसवो वासवाभिधम् ॥२३॥

कुबेरने सौम्यास्त्र, ईशानने रुद्रास्त्र, सूर्यने सौरास्त्र, चन्द्रमाने सौम्यास्त्र, विश्वेदेवाने पार्वतास्त्र, आठों वसुओंने वासवास्त्र प्रदान किया ॥ २३ ॥

अथ तुष्टः प्रणम्येशं रामो दशरथात्मजः ॥
प्राञ्जलिः प्रणतो भूत्वा भक्तियुक्तो व्यजिज्ञपत् २४

तब दशरथकुमार रामचन्द्र प्रसन्न हो शिवजीको प्रणाम कर हाथ जोड खडे हो भक्तिपूर्वक बोले ॥ २४ ॥

श्रीराम उवाच ।

भगवन्मानुषैरेव नोल्लंघ्यो लवणाम्बुधिः ॥
तत्र लंकाभिधं दुर्गं दुर्जयं देवदानवैः ॥ २५ ॥

श्रीरामचंद्रजी बोले, हे भगवन् ! मनुष्योंसे वो क्षारसमुद्र उल्लंघन नहीं किया जायगा और लंकादुर्ग देवता तथा दानवोंको भी दुर्गम है ॥ २५ ॥

अनेककोटयस्तत्र राक्षसा बलवत्तराः ॥
सर्वे स्वाध्यायनिरताः शिवभक्ता जितेन्द्रियाः २६

और वहां करोडों बली राक्षस रहते हैं वे सब जितेंद्रिय वेदपाठ करनेमें तत्पर आपके भक्त हैं ॥ २६ ॥

अनेकमायासंयुक्ता बुद्धिमन्तोऽग्निहोत्रिणः ॥
कथमेकाकिना जेया मया भ्रात्रा च संयुगे ॥ २७॥

अनेकप्रकारकी मायाके जाननेहारे बुद्धिमान् अग्निहोत्री हैं। केवल मैं और भ्राता लक्ष्मण युद्धमें उनको कैसे जीतसकेंगे॥२७॥

श्रीमहादेव उवाच ।

रावणस्य वधे राम रक्षसामपि मारणे ॥
विचारो न त्वया कार्यस्तस्य कालोऽयमागतः २८

शिवजी बोले—हे रामचन्द्र ! रावण और राक्षसोंके मारनेमें विचार करनेकी कुछ आवश्यकता नहीं, कारण कि उसका काल आगया है ॥ २८ ॥

अधर्मे तु प्रवृत्तास्ते देवब्राह्मणपीडने ॥
तस्मादायुः क्षयं यातं तेषां श्रीरपि सुव्रत ॥ २९॥

वे देवता और ब्राह्मणको दुःख देनेरूपी अधर्ममें प्रवृत्त हुए हैं हे सुव्रत ! इस कारण उनकी आयु और लक्ष्मीका भी क्षय हो गया है ॥ २९ ॥

राजस्त्रीकामनासक्तं रावणं निहनिष्यसि ॥
पापसक्तो रिपुर्जेतुं सुकरः समराङ्गणे ॥ ३० ॥

उसने राजस्त्री जानकीजीकी अवमानना की है। इस कारण तुम उसे सहजमें मारसकोगे, कारण कि वह इस समय अपमानमें आसक्त रहता है ॥ ३० ॥

अधर्मे निरतः शत्रुर्भाग्येनैव हि लभ्यते ॥
अधीतधर्मशास्त्रोऽपि सदा वेदरतोऽपि वा ॥
विनाशकाले संप्राप्ते धर्ममार्गाच्च्युतो भवेत् ॥३१॥

अधर्ममें प्रीति करनेवाला शत्रु भाग्यसेही प्राप्त होता है। जिसने वेदशास्त्र पढा हो और सदा धर्ममें प्रीति करता हो वह विनाशकाल आनेपर धर्मको त्याग करदेता है ॥ ३१ ॥

पीड्यन्ते देवताः सर्वाः सततं येन पापिना ॥
ब्राह्मणा ऋषयश्चैव तस्य नाशः स्वयं स्थितः ३२

जो पापी सदा देवता ब्राह्मण और ऋषियोंको दुःख देता है, उसका नाश स्वयं होता है ॥ ३२ ॥

किष्किन्धानगरे राम देवानामंशसंभवाः ॥
वानरा बहवो जाता दुर्जया बलवत्तराः ॥ ३३ ॥

हे राम ! किष्किन्धा नामक नगरमें देवताओंके अंशसे बहुतसे महाबली और दुर्जय वानर उत्पन्न हुए हैं ॥ ३३ ॥

साहाय्यं ते करिष्यंति तैर्बद्ध्वा च पयोनिधिम् ॥
अनेकशैललक्षबद्धे सेतौ यांतु वलीमुखाः ॥
रावणं सगणं हत्वा तामानय निजां प्रियाम् ॥ ३४॥

वे सब तुम्हारी सहायता करेंगे । उनके द्वारा तुम सागर पर सेतु बँधवाना अनेकपर्वत लाकर वे वानर पुल बांधेंगे उसपर सब वानर उतरजायँगे । इस प्रकार रावणको उसके साथियोंसहित मारकर वहांसे अपनी प्रियाको लाओ ॥ ३४ ॥

शस्त्रैर्युद्धे जयो यत्र तत्रास्त्राणि न योजयेत् ॥
निरस्त्रेष्वल्पशस्त्रेषु पलायनपरेषु च ॥
अस्त्राणि मुञ्चन्दिव्यानि स्वयमेव विनश्यति ॥ ३५ ॥

जहां संग्राममें शस्त्रसे ही जय प्राप्त होनेकी संभावना हो व अस्त्रोंका प्रयोग न करना और जिनके पास अस्त्र नहीं अथवा थोडे शस्त्र हैं तथा जो भाग रहे ऐसे पुरुषोंके ऊ दिव्यास्त्रका प्रयोग करनेवाला स्वयं नष्ट हो जाता है ॥ ३५ ॥

अथवा किं बहूक्तेन मयैवोत्पादितं जगत् ॥
मयैव पाल्यते नित्यं मया संह्रियतेऽपि च ॥ ३६ ॥

बहुत कहनेसे क्या है यह संसार मेराही उत्पन्न किया है मैं ही इसका पालन और मैंही इसका संहार करता हूँ ॥ ३६ ॥

अहमेको जगन्मृत्युर्मृत्योरपि महीपते ॥
ग्रसेऽहमेव सकलं जगदेतच्चराचरम् ॥ ३७ ॥

मैंही एक जगत्की मृत्युकाभी मृत्युस्वरूप हूं, हे राजन् मैंही इस चराचर जगत्का भक्षण करनेवाला हूं ॥ ३७ ॥

मम वक्त्रगताः सर्वे राक्षसा युद्धदुर्मदाः ॥
निमित्तमात्रं त्वं भूयाः कीर्तिमाप्स्यसि सङ्गरे ॥ ३८ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे रामाय वरप्रदानं नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

ये युद्धदुर्मद सब राक्षस तो मेरे मुखमें प्राप्त हो चुके हैं तुम निमित्तमात्र होकर संग्राममें कीर्ति पाओगे ॥ ३८ ॥

इति श्रीशिवगीता पं० ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत-भाषाटी० रामाय वरप्रदानं नाम पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

श्रीराम उवाच ।

भगवन्नत्र मे चित्रं महदेतत्प्रजायते ॥
शुद्धस्फटिकसङ्काशस्त्रिनेत्रश्चन्द्रशेखरः ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्र बोले-हे भगवन् ! आप कहते हो कि मैंही जगत्की उत्पत्ति और पालन करता हूं इसमें मुझे बडा आश्चर्य है । स्वच्छ स्फटिक मणिकी समान जिनका शरीर और तीन नेत्र तथा मस्तकपर चंद्रमा है ॥ १ ॥

मूर्तस्त्वं तु परिच्छिन्नाकृतिः पुरुषरूपधृक् ॥
अम्बया सहितोऽत्रैव रमसे प्रमथैः सह ॥ २ ॥

ऐसे आप परिच्छिन्न और पुरुषाकृति मूर्ति धारण किये और पार्वती सहित प्रथम आदि गणोंके साथ यहीं विहार करते हो ॥ २ ॥

त्वं कथं पञ्चभूतादि जगदेतच्चराचरम् ॥
तद्ब्रूहि गिरिजाकान्त मयि तेऽनुग्रहो यदि ॥ ३ ॥

फिर तुमने पंचभूतादि यह चराचर जगत् कैसे उत्पन्न किया है । हे गिरिजापते ! जो आपकी मुझपर कृपा है तो आप कहिये ॥ ३ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

साधु पृष्टं महाभाग दुर्ज्ञेयममरैरपि ॥
तत्प्रवक्ष्यामि ते भक्त्या ब्रह्मचर्येण सुव्रत ॥
पारं यास्यस्यनायासाद्येन संसारनीरधेः ॥ ४ ॥

श्री भगवान् बोले—हे महाभाग रामचंद्र ! सुनो, जो देवताओंकीभी बुद्धिमें नहीं आता वह मैं यत्नपूर्वक तुमसे कहता हूं जिससे तुम अनायासही संसारसागरसे पार हो जाओगे ॥ ४ ॥

दृश्यन्ते पञ्चभूतानि येन लोकाश्चतुर्दश ॥
समुद्राः सरितो देवा राक्षसा ऋषयस्तथा ॥ ५ ॥

जो कुछ यह पांच महाभूत, चौदह भुवन, समुद्र, पर्वत, देवता, राक्षस और ऋषि दीखते हैं ॥ ५ ॥

दृश्यते यानि चान्यानि स्थावराणि चराणि च ॥
गन्धर्वाः प्रमथा नागाः सर्वे ते मद्विभूतयः ॥ ६ ॥

तथा और जो स्थावर, जंगम, गन्धर्व, प्रमथ और नाग दीखते हैं यह सब मेरी विभूति हैं ॥ ६ ॥

पुरा ब्रह्मादयो देवा द्रष्टुकामा ममाकृतिम् ॥
मन्दरं प्रययुः सर्वे मम प्रियतरं गिरिम् ॥ ७ ॥

---

* चौदहभुवन—भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं यह सात ऊपरके लोक । अतल, वितल, सुतल, रसातल, तलातल, महातल और पाताल यह सात अधोलोक मिलाकर चौदह लोक हुए ।

प्रथम ब्रह्मादि देवता मेरा रूप देखनेके निमित्त मेरे प्रिय मन्दराचल पर गये ॥ ७ ॥

स्तुत्वा प्राञ्जलयो देवा मां तत्र पुरतः स्थिताः ।
तान्दृष्ट्वाथ मया देवाँल्लीलाकुलितचेतसः ॥ ८ ॥

देवता हाथ जोड मेरे आगे स्थित हुए तब मैंने देवताओंको लीलासे व्याकुलचित्त जानकर उन ब्रह्मादि देवताओंका ज्ञान हरलिया ॥ ८ ॥

तेषामपहृतं ज्ञानं ब्रह्मादीनां दिवौकसाम् ॥
अथ तेऽपहृतज्ञाना मामाहुः को भवानिति ॥
अथाब्रुवमहं देवानहमेव पुरातनः ॥ ९ ॥

वे तत्कालही ज्ञानरहित हो मुझसे बोले तुम कौन हो ? तब मैंने देवताओंसे कहा मैंही पुरातन हूं ॥ ९ ॥

आसं प्रथममेवाहं वर्तामि च सुरेश्वराः ॥ भविष्यामि च लोकेऽस्मिन्मत्तो नान्योऽस्ति कश्चन ॥ १० ॥

हे देवताओ ! सृष्टिसे पहलेही मैंही था, वर्तमानमेंभी मैंही हूं और अन्तमेंभी मैंही रहूंगा । इस लोकमें मेरे सिवाय और कुछ नहीं है ॥ १० ॥

व्यतिरिक्तं च मत्तोऽस्ति नान्यत्किञ्चित्सुरेश्वराः ॥
नित्योऽनित्योऽहमनघो ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पतिः ॥ ११ ॥

हे सुरेश्वरो ! मुझसे व्यतिरिक्त और कुछ वस्तु नहीं है ।

नित्य अनित्यभी मैंही हूं तथा मैंही पापरहित वेद और ब्रह्मा-ण्डाभी पति हूँ ॥ ११ ॥

दक्षिणा च उदञ्चोऽहं प्राञ्चः प्रत्यञ्च एव च ॥
अधश्चोर्ध्वं च विदिशो दिशश्चाहं सुरेश्वराः॥१२॥

मैंही दक्षिण उत्तर पूर्व पश्चिम हूं। हे सुरेश्वरो ! ऊपर नीचे दिशा विदिशा सब मैंहीं हूं ॥ १२ ॥

सावित्री चापि गायत्री स्त्री पुमानपुमानपि ॥
त्रिष्टुब्जगत्यनुष्टुप् च पंक्तिश्छन्दस्त्रयीमयः॥१३॥

सावित्री, गायत्री, स्त्री, पुरुष, नपुंसक, त्रिष्टुप्, जगती, अनुष्टुप् और पंक्तिछन्दभी मैं ही हूं, तथा मैंही तीनों वेदोंमें वर्णन किया गया हूं ॥ १३ ॥

सत्योऽहं सर्वगः शान्तस्त्रेताग्निर्गौरहं गुरुः ॥
गौरहं गह्वरं चाहं द्यौरहं जगतां विभुः ॥ १४ ॥

मैं ही सत्यस्वरूप मायाके विकारसे रहित हूं सब प्रकार शांत दक्षिणाग्नि, गार्हपत्य, आहवनीय तीन अग्निस्वरूप हूं। गौ, गुरुमें गुरुता, वाणी, वाणीका रहस्य, स्वर्ग और जगत्का पति मैं ही हूं ॥ १४ ॥

ज्येष्ठः सर्वसुरश्रेष्ठो वरिष्ठोऽहमपांपतिः ॥
आर्योऽहं भगवानीशस्तेजोऽहं चादिरप्यहम् १५

मैं ही सबसे श्रेष्ठ सब देवताओंसे श्रेष्ठ ज्ञानियोंमें पूज्य सब जलोंका पति सागर मैं ही हूं। मैंही पर्वोंके योग्य प॰

गुण ऐश्वर्यसम्पन्न तेजःस्वरूप और उसकी आदिवायुभी मैं ही हूं ॥ १५ ॥

ऋग्वेदोऽहं यजुर्वेदः सामवेदोऽहमात्मभूः ॥
अथर्वणश्च मन्त्रोऽहं तथा चाङ्गिरसो वरः ॥ १६ ॥

मैंही ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और श्रेष्ठ आंगिरस अथर्ववेद हूं मैं ही स्वयम्भू हूं ॥ १६ ॥

इतिहासपुराणानि कल्पोऽहं कल्पवानहम् ॥
नाराशंसी च गाथाहं विद्योपनिषदोऽस्म्यहम् १७

भारतादि इतिहास, ब्राह्मपुराणादि पुराण, कल्पसूत्र, उनका प्रवर्तक बोधायनादि ऋषि, नाराशंसी नामक रुद्र तत्वके प्रतिपादक मुख्य तत्त्वकी प्रतिपादन करनेवाली गाथा, उपासनाकाण्ड, उपनिषद् यह सब मैंही हूं ॥ १७ ॥

श्लोकाः सूत्राणि चैवाहमनुव्याख्यानमेव च ॥
व्याख्यानानि परा विद्या इष्टं हुतमथाहुतिः ॥ १८ ॥

"तदप्येष श्लोको भवति" इत्यादि श्लोक सांख्ययोगादि सूत्र व्याख्यान अनुव्याख्यान गान्धर्व गान विद्यादि यज्ञ-होम आहुति ॥ १८ ॥

दत्तादत्तमयं लोकः परलोकोऽहमक्षरः ॥
क्षरः सर्वाणि भूतानि दान्तिः शान्तिरहं खगः ॥
गुह्योऽहं सर्ववेदेषु आरण्योऽहमजोऽप्यहम् ॥ १९ ॥

गाय आदि दानके पदार्थ दान देना, यह लोक, अविनाशि परलोक, क्षर–प्राणिमात्रोंके हृदयमें वास करनेहारा इन्द्रियनिग्रह, मनोनिग्रह और खग–जीवभी मैं ही हूं, सब वेदोंमें गूढ भी मैंही हूं, निर्जनस्थानवासीभी मैं ही हूं, जन्मरहित भी मैंही हूं ॥ १९ ॥

पुष्करं च पवित्रं च मध्यं चाहमतः परम् ॥
बहिश्चाहं तथा चांतः पुरस्तादहमव्ययः ॥ २० ॥

पुष्कर, पवित्र, सबके मध्य और बाहर भीतर आगे अविनाशी मैंही हूं ॥ २० ॥

ज्योतिश्चाहं तमश्चाहं तन्मात्राणीन्द्रियाण्यहम् ॥
बुद्धिश्चाहमहंकारो विषयाण्यहमेव हि ॥ २१ ॥

तेज, अन्धकार, इन्द्रिय, इन्द्रियके गुण, बुद्धि, अहंकार और शब्दादि विषय मैंही हूं ॥ २१ ॥

ब्रह्मा विष्णुर्महेशोऽहमुमा स्कन्दो विनायकः ॥
इन्द्रोऽग्निश्च यमश्चाहं निर्ऋतिर्वरुणोऽनिलः ॥२२॥

ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, उमा, स्कन्द, गणपति, इंद्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु ॥ २२ ॥

कुबेरोऽहं तथेशानो भूर्भुवः स्वर्महर्जनः ॥ तपः
सत्यं च पृथिवी चापस्तेजोऽनिलो प्यहम् ॥ २३॥

कुबेर, ईशान, भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः, सत्यं ये सात लोक पृथ्वी, जल, वायु ॥ २३ ॥

आकाशोऽहं रविः सोमो नक्षत्राणि ग्रहास्तथा ॥
प्राणः कालस्तथा मृत्युरमृतं भूतमप्यहम् ॥२४॥

आकाश, सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र, ग्रह, प्राण, काल, मृत्यु, अमृत, भूत, प्राणी यह सब मैंही हूं ॥ २४ ॥

भव्यं भविष्यत्कृत्स्नं च विश्वं सर्वात्मकोऽप्यहम् ॥
ओमादौ च तथा मध्ये भूर्भुवः स्वस्तथैव च ॥
ततोऽहं विश्वरूपोऽस्मि शीर्षं च जपतां सदा॥२५॥

वर्तमान और भविष्य मैंही हूं, सम्पूर्ण विश्व सर्वरूपभी मैंही हूं ओंकारके आदि और मध्यमें भूर्भुवः स्वः मैंही हूं और गायत्री शीर्ष जपनेवालोंका विराट् स्वरूपभी मैही हूं ॥ २५ ॥

अशितं पायितं चाहं कृतं चाकृतमप्यहम् ॥
परं चैवापरं चाहमहं सर्वपरायणः ॥ २६ ॥

भक्षण, पान, कृत, अकृत (नहीं किया) तथा पर, अपर मैंही हूं और सबका आश्रय मैंही हूं ॥ २६ ॥

अहं जगद्धितं दिव्यमक्षरं सूक्ष्ममव्ययम् ॥
प्राजापत्यं पवित्रं च सौम्यमग्राह्यमग्रियम् ॥ २७॥

मैंही जगत्का हित, अक्षर, सूक्ष्म, दिव्य, प्रजापति, पवित्र, सोम, देवता, अग्राह्य, (जो ग्रहण करनेमें न आवे) और सबका आदि मैंही हूं ॥ २७ ॥

अहमेवोपसंहर्ता महाग्रस्तेजसां निधिः ॥
हृदि यो देवतात्वेन प्राणत्वेन प्रतिष्ठितः ॥२८॥

मैंही सबका उपसंहार करनेवाला, मैंही पर्वत, सागर इत्यादि गुरुवस्तु और प्रलयकालिक अग्नि सूर्यादितेज इन सब पदार्थोंमें विद्यमान हूं, मैं ही सब प्राणियोंके हृदयमें देवता और प्राणरूपसे स्थित हूं ॥ २८ ॥

शिरश्चोत्तरतो यस्य पादा दक्षिणतस्तथा ॥
यश्च सर्वोत्तरःसाक्षादोङ्कारोऽहं त्रिमात्रकः ॥२९॥

जिसका शिर (स्पर्श संज्ञकवर्ण) उत्तरको और जिसके पाद (ऊष्म संज्ञक वर्ण) दक्षिणकी ओर जिसके अन्तर (अन्तस्थसंज्ञक वर्ण) मध्यमें हैं, ऐसा त्रिमात्रिक साक्षात् ओंकार मैं हूं ॥ २९ ॥

ऊर्ध्वं चोन्नामये यस्मादधश्चापनयाम्यहम् ॥
तस्मादोङ्कार एवाहमेको नित्यः सनातनः ॥ ३०॥

जिस कारणसे कि मैं जप करनेवालोंको स्वर्गादि लोकको लेजाता हूं, पुण्यक्षीण पुरुषोंको नीचे ले जाता हूं, इस कारण मैं एक निरन्तर नित्य सनातन ओंकार हूं ॥ ३० ॥

ऋचो यजूंषि सामानि यो ब्रह्मा यज्ञकर्माणि ॥
प्रणामये ब्राह्मणेभ्यस्तेनाहं प्रणवो मतः ॥३१ ॥

यज्ञकर्ममें ब्रह्मा नामक ऋत्विक् होकर ऋग्यजु और सामके मन्त्र ऋत्विजोंको देता हूं, इस कारण मैंही प्रणवरूप हूं तात्पर्य यह कि सब मैंही हूं ॥ ३१ ॥

स्नेहो यथा मांसपिण्डं व्याप्नोति व्यापयत्यपि ॥
सर्वांल्लोकानहं तद्वत्सर्वव्यापी ततोस्म्यहम् ॥३२॥

जैसे घृत तैलादि स्नेह द्रव्य मांसपिंडमें व्याप्त होकर भक्षण करनेवालेकी सब देहको व्याप्त करते हैं, इसी प्रकार सब लोकोंमें अधिष्ठानरूपसे व्याप्त होकर मैं सर्वव्यापी हूं ॥ ३२ ॥

ब्रह्मा हरिश्च भगवानाद्यन्तं नोपलब्धवान् ॥
ततोऽन्ये च सुरायस्मादनन्तोऽहमितीरितः ॥ ३३ ॥

ब्रह्मा हरि भगवान् व और दूसरे देवभी मेरा आदि और अन्त नहीं ऐसा जानते इस कारणसे मैं अनन्त हूं ॥ ३३ ॥

गर्भजन्मजरामृत्युसंसारभवसागरात् ॥
तारयामि यतो भक्तं तस्मात्तारोऽहमीरितः ॥ ३४ ॥

गर्भवास जन्म जरामृत्युसे भरे संसारसागरसे मैं भक्तोंको तारदेता हूं इस कारण मेरा नाम तारक है ॥ ३४ ॥

चतुर्विधेषु देहेषु जीवत्वेन वसाम्यहम् ॥
सूक्ष्मो भूत्वा च हृद्देशे यत्तत्सूक्ष्मं प्रकीर्तितः ३५

जरायुज, स्वेदज, अंडज, उद्भिज्ज इन चार प्रकारके देहोंमें मैं जीवरूपसे वास करता हूं और उनके हृदयाकाशमें सूक्ष्म रूप होकर वास करता हूं, इससे मैं सूक्ष्म कहाता हूं ॥ ३५ ॥

महातमसि मग्नेभ्यो भक्तेभ्यो यत्प्रकाशये ॥
विद्युद्वदतुलं रूपं तस्माद्वैद्युतमस्म्यहम् ॥ ३६ ॥

महाअन्धकारमें मग्न हुए भक्तोंको उद्धार करनेके निमित्त बिजलीकी समान दीप्तिमान् निरुपम तेजरूप प्रगट करताहूं इस कारणमें विद्युत्स्वरूप हूं ॥ ३६ ॥

एक एव यतो लोकान्विसृजामि सृजामि च ॥
विवासयामि गृह्णामि तस्मादेकोऽहमीश्वरः ॥ ३७॥

जिस कारणसे कि मैं एकही लोकोंको उत्पन्न और संहार करके लोकान्तरमें पहुँचाता हूँ और ग्रहण करता हूं इस कारणसे मुझे स्वतंत्र और एक ईश्वर कहते हैं ॥ ३७ ॥

न द्वितीयो यतश्चास्ति तुरीयं ब्रह्म यत्स्वयम् ॥
भूतान्यात्मनि संहृत्य चैको रुद्रो वसाम्यहम् ३८

प्रलयकालमें कोई दूसरा स्थित नहीं रहता केवल मैं ही तीनों गुणोंसे परे स्वयं ब्रह्मरुद्रस्वरूप सब प्राणियोंको अपनेमें लय करके स्थित होता हूं ॥ ३८ ॥

सर्वाँल्लोकान्यदीशेऽहमीशिनीभिश्च शक्तिभिः ॥
ईशानमस्य जगतः स्वदृशं चक्षुरीश्वरम् ॥ ३९ ॥

जो कि मैं सब लोकोंको ईशिनी अर्थात् सब लोकोंको स्वाधीन रखनेवाली शक्तियोंसे स्वाधीन रखता हूं उनपर सत्ता चलाता हूं इस कारण सर्वद्रष्टा सबका चक्षु मैं ईशान कहाजाता हूं ॥ ३९ ॥

ईशानश्चास्मि जगतां सर्वेषामपि सर्वदा ॥
ईशानः सर्वविद्यानां यदीशानस्ततोऽस्म्यहम् ४०॥

मैं स्थिर और चर सब प्राणियोंका सदा ईश्वर हूं तथा सब विद्याओंका अधिपति हूं, अर्थात् सर्व ईश्वर शक्तिसम्पन्न हूं इससे मेरा ईशान नाम सार्थ है ॥ ४० ॥

सर्वभावान्निरीक्ष्येहमात्मज्ञानं निरीक्षये ॥
योगं च गमये तस्माद्भगवान्महतो मतः ॥ ४१ ॥

मैं सब अतीत और अनागत पदार्थोंको आत्मज्ञानसे देखता हूं, इसी प्रकार साधनसम्पन्न पुरुषको आत्मज्ञानरूप योगका उपदेश करता हूँ, और सबमें व्यापनेसे मैं भगवान् ऐश्वर्यवान् हूं ॥ ४१ ॥

अजस्रं यच्च गृह्णामि विसृजामि सृजामि च ॥
सर्वाँल्लोकान्वासयामि तेनाहं वै महेश्वरः ॥ ४२ ॥

मैं निरन्तर सब लोकोंकी उत्पत्ति, पालन और संहार करता हूं, इस कारण मुझे महेश कहते हैं ॥ ४२ ॥

महत्यात्मज्ञानयोगैश्वर्ये यस्तु महीयते ॥
सर्वान्भावान्परित्यज्य महादेवश्च सोस्म्यहम् ॥ ४३ ॥

महत् पुरुषोंमें आत्मज्ञान और अष्टांग योगसे जो महिमा विद्यमान है और जो सब पदार्थोंको उत्पन्न करके रक्षा करता है वह महादेव मैंही हूं ॥ ४३ ॥

एकोऽस्मि देवः प्रदिशो नु सर्वाः पूर्वो हि जातोऽस्म्यहमेव गर्भे ॥ अहं हि जातश्च जनिष्यमाणः प्रत्यग्जनस्तिष्ठति सर्वतोमुखः ॥ ४४ ॥

मैंही श्रुतिप्रतिपादित एक देव सम्पूर्ण दिशाओंमें वर्तमान हूं मैंही सबसे प्रथम गर्भमें वास करनेहारा, गर्भसे निकलने-

हारा और पीछे उत्पन्न होनेहारा हूं मैंही सम्पूर्ण लोक हूं और सब दिशाओंमें मेराही मुख है ॥ ४४

विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो हस्त उत विश्वतस्पात् ॥ संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावाभूमी जनयन्देव एकः ॥ ४५ ॥

सर्वत्र मेरे नेत्र सर्वत्र मेरा मुख सर्वत्र भुजा और सर्वत्र मेरे चरण हैं मैंही भुजा और चरणोंसे स्वर्ग और भूमिका उत्पन्न करता हुआ एक देवस्वरूप हूं ॥ ४५ ॥

वालाग्रमात्रं हृदयस्य मध्ये विश्वं देवं जातवेदं वरेण्यम् ॥ मामात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरास्तेषां शांतिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ ४६ ॥

"केशके अग्रभागके समान सूक्ष्मरूप हृदयमें रहनेवाला, विश्वव्यापक, स्वप्रकाश, श्रेष्ठ आत्मस्वरूप मैं हूं मुझे जो चतुर पुरुष तत्त्वमस्यादि वाक्योंके ज्ञानसे (वह तू है) ऐसी उपाधि त्यागकर जीव और ब्रह्मको एकतासे देखते हैं अर्थात एक स्वरूप जानते हैं-वेही निरन्तर मोक्षको प्राप्त होते हैं दूसरे नहीं ॥ ४६ ॥

अहं योनिंयोनिमधितिष्ठामि चैको मयेदं पूर्णं पञ्चविधं च सर्वम् ॥ मामीशानं पुरुषं देवमीड्यं विदित्वा निचाय्य मां शांतिमत्यन्तमेति ॥ ४७ ॥

सीपीमें जो रजतबुद्धि है यह भ्रान्ती है परन्तु रजतके भ्रमका आधार शुक्ति यथार्थ है उसी प्रकार मेरे स्वरूपमें भासनेहारा जगत् मिथ्या है परन्तु उसका आधार मैं सत्य तथा एकरूप हूँ मैंही यह पंचभूतात्मक जगत् धारण किये हूँ ऐसे मुझ ईश्वरके स्वरूपमें जो विवेक करेगा उसको अनन्त शान्ति अर्थात् मुक्तिकी प्राप्ति होगी ॥ ४७ ॥

प्राणेष्वंतर्मनसो लिङ्गमाहुरस्मिन्क्रोधोयाचतृष्णा क्षमा च । तृष्णां हित्वा हेतुजालस्य मूलं बुद्ध्या चित्तं स्थापयित्वा मयीह ॥ एवं ये मां ध्यायमाना भजंते तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ ४८ ॥

प्राणका ही अन्तर्गत मन है वहां क्षुधा पिपासा और तृष्णा रहती है इससे शुभाशुभ फल प्राप्तिका कारण जो धर्म अधर्म है उसके भी कारण विषयतृष्णाको छिन्न कर निश्चयात्मक बुद्धि मुझमें अन्तःकरण लगाकर जो मेरा ध्यान करते हैं उनको निरन्तर शांति और मोक्षसुख प्राप्त होता है दूसरोंको नहीं ॥ ४८ ॥

यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥ आनन्दं ब्रह्म मां ज्ञात्वा न बिभेति कुतश्चन ॥ ४९ ॥

जहां वाणीकी गति नहीं जहां मन नहीं पहुँचसकता इस प्रकार आनन्द ब्रह्मरूप मेरे जाननेवालेको कहींसे भय प्राप्त नहीं होता ॥ ४९ ॥

श्रुत्वेति देवा मद्वाक्यं कैवल्यज्ञानमुत्तमम् ॥
जपन्तो मम नामानि मम ध्यानपरायणाः ॥९०॥

इस कारण देवता मेरे वचन जो कि आत्मस्वरूप ज्ञानके देनेवाले हैं सुनकर मेरे नामका जप करके मेरे ही ध्यानपरायण हुए ॥ ९० ॥

सर्वे ते स्वस्वदेहान्ते मत्सायुज्यं गताः पुरा ॥
ततोऽग्रे परिदृश्यन्ते पदार्था मद्विभूतयः ॥ ९१ ॥

देहान्तमें वे सब मेरे सायुज्यको प्राप्त होगये । जो कुछ ये पदार्थ दीखते हैं यह सब मेरीही विभूति हैं ॥ ९१ ॥

मय्येव सकलं जातं मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥
मयि सर्वं लयं याति तद्ब्रह्माद्वयमस्म्यहम् ॥९२॥

यह सब वस्तु मुझसेही उत्पन्न हो मुझमेंही प्रतिष्ठित है और अन्तमें मुझमें ही लय हो जाती है मैंही अद्वय ब्रह्म हूं ॥ ९२ ॥

अणोरणीयानहमेव तद्वन्महानहं विश्वमहं विशुद्धः ।
पुरातनोऽहं पुरुषोऽहमीशो हिरण्मयोऽहं शिव-रूपमस्मि ॥ ९३ ॥

मैं ही सूक्ष्मसे भी अति सूक्ष्म महान्सेभी महान् मैं ही विश्वरूप निर्लेप पुरातन पुरुष सर्वेश्वर तेजोमय और शिव-रूप हूं ॥ ९३ ॥

अपाणिपादोऽहमचिन्त्यशक्तिः पश्याम्यचक्षुः स

शृणोम्यकर्णः ॥ अहं विजानामि विविक्तरूपो न चास्ति वेत्ता मम चित्सदाहम् ॥ ९४ ॥

मेरे हस्त चरण नहीं और सब कुछ कर सकता हूं मेरी शक्ति किसीके ध्यानमें नहीं आती मेरे भौतिक नेत्र नहीं तथापि सब कुछ देखता हूँ कान नहीं और सब कुछ सुनता हूं मैं सत् असत् सब विचारको जानता हूँ, मेरा एकान्तस्वरूप है मेरा जाननेवाला कोई नहीं मैं सदा चैतन्यस्वरूप हूँ ॥ ९४ ॥

वेदैरशेषैरहमेव वेद्यो वेदान्तकृद्वेदविदेव चाहम् ॥ न पुण्यपापे मम नास्ति नाशो न जन्म देहेन्द्रियबुद्धिरस्ति ॥ ९५ ॥

सम्पूर्ण वेदोंमें मैंही जानने योग्य हूँ वेदान्तका कर्ता और वेदका जाननेवाला भी मैं ही हूं । मुझमें पाप और पुण्य नहीं, मेरा नाश तथा जन्म नहीं मुझे देह इन्द्रिय और बुद्धिका संबन्ध नहीं है ॥ ९५ ॥

न भूमिरापो न च वह्निरस्ति न चानिलो मेऽस्ति न मे नभश्च ॥ एवं विदित्वा परमात्मरूपं गुहाशयं निष्कलमद्वितीयम् ॥ समस्तसाक्षि सदसद्विहीनं प्रयाति शुद्धं परमात्मरूपम् ॥ ९६ ॥

भूमि, जल, तेज, वायु, आकाश इनसे मैं लिप्त नहीं हूँ। इस प्रकारसे पंचकोशात्मक गुहामें निवास करनेहारा निर्विकार संगरहित सर्वसाक्षी कार्यकारण भेदशून्य परमात्मा हूं ।

जो मुझको इस प्रकारसे जानते हैं वे मेरे शुद्ध परमात्म स्वरूपको प्राप्त होते हैं ॥ ९६ ॥

एवं मां तत्त्वतो वेत्ति यस्तु राम महामते ॥
स एव नान्यो लोकेषु कैवल्यफलमश्नुते ॥ ९७ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु० विभूतियोगो नाम षष्ठोऽध्यायः ॥ ६ ॥

हे महाबुद्धिमन् ! रामचन्द्र ! इस प्रकार जो मुझे तत्त्वसे जानता है वही संसारसे मुक्त होता है दूसरा नहीं ॥ ९७ ॥

इति श्री शिवराघवसंवादे विभूति योगोनाम षष्ठोऽध्यायः ॥

श्रीराम उवाच ।

भगवन्यन्मया पृष्टं तत्तथैव स्थितं विभो ॥
अत्रोत्तरं मया लब्धं तत्त्वो नैव महेश्वर ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्र बोले—हे भगवन् ! जो कुछ मैंने प्रश्न किया है वह तो उसी प्रकार स्थित है, हे महेश्वर ! आपने इस विषयका कोई उत्तर नहीं दिया ॥ १ ॥

परिच्छिन्नपरीमाणे देहे भगवतस्तव ॥
उत्पत्तिः पञ्चभूतानां स्थितिर्वा विलयः कथम् ॥ २ ॥

हे महेश्वर ! आपका देह परिच्छिन्नपरिमाण अर्थात् इयत्ता करनेके योग्य है फिर सब संसारकी उत्पत्ति पालन नाश कैसे करते हो ॥ २ ॥

स्वस्वाधिकारसंबद्धाः कथं नाम स्थिताः सुराः ॥
ते सर्वे त्वं कथं देव भुवनानि चतुर्दश ॥ ३ ॥

इसी प्रकार अपने २ अधिकारके पालन करनेवाले इन्द्र वरुणादि सब देवता तुम्हारे देहमें कैसे रहते हैं और वे सब देवता और चौदह भुवन यह मैंही हूं ऐसा जो तुम कहते हो तो कैसे कहते हो अर्थात् जबतक उपाधि है तबतक जीव ईश्वरका अभेद संभवित नहीं होता और जड प्रपंच महाभूतोंमें चेतनका तादात्म्य संभवित नहीं ॥ ३ ॥

त्वत्तः श्रुत्वापि देवात्र संशयो मे महानभूत् ॥
अप्रत्यायितचित्तस्य संशयं छेत्तुमर्हसि ॥ ४ ॥

हे देव ! आपसे उत्तर सुना परन्तु संदेह नहीं जाता कारण कि चित्तका निश्चय नहीं इस सन्देहको दूर करनेको आपहीं समर्थ हो ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

वटबीजेऽतिसूक्ष्मेऽपि महावटतरुर्यथा ॥
सर्वदास्तेऽन्यथा वृक्षः कुत आयाति तद्वद ॥
तद्वन्मम तनौ राम भूतानामागतिर्लयः ॥ ५ ॥

श्रीभगवान् बोले—सूक्ष्म वटके बीजमें जिस प्रकार महान् वटका वृक्ष सदा रहता है और उसीसे वह वृक्ष निकल भी आता है यदि ऐसा न हो तो बतओ वह वृक्ष कहांसे आता है इसी प्रकार मेरे सूक्ष्म शरीरसे सब भूतोंको जन्म पालन और नाश होता है ॥ ५ ॥

महासैन्धवपिण्डोऽपि जले क्षिप्ता विलीयते ॥
न दृश्यते पुनः पाकात्कुत आयाति पूर्ववत् ॥६॥

जिस प्रकारसे जलके बीचमें बडा सैन्धेका खण्ड डालनेसे वह उसमें विलीन होजाता है और नहीं दीखता पीछे उस जलको अग्निमें औटानेसे वह पूर्ववत् प्राप्त होजाता है ॥ ६ ॥

प्रातः प्रातर्यथा लोको जायते सूर्यमण्डलात् ॥
एवं मत्तो जगत्सर्वं जायतेऽस्ति विलीयते ॥
मय्येव सकलं राम तद्विजानीहि सुव्रत ॥ ७ ॥

अथवा जैसे प्रतिदिन सूर्यसे प्रकाश उत्पन्न होता और संध्या समय विलीन होजाता है इसी प्रकार मुझसे जगत् उत्पन्न होकर विलीन होजाता है और मुझमें ही स्थिर रहता है हे सुव्रत राम ! तुम ऐसा जानो ॥ ७ ॥

श्रीराम उवाच ।

कथितेऽपि महाभाग दिग्जडस्य यथा दिशि ।
निवर्तते भ्रमो नैव तद्वन्मम करोमि किम् ॥ ८ ॥

श्रीरामचंद्र बोले–हे भगवन् ! आपने दृष्टान्तसे प्रतिपादन किया परन्तु जिस प्रकार दिशाओंके भ्रमवालेको उत्तरादि दिशाओंका भ्रम होजाता है, इसी प्रकार मुझे भ्रम होगया है वह निवृत्त नहीं होता मैं क्या करूं ॥ ८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

मयि सर्वं यथा राम जगदेतच्चराचरम् ॥
वर्तते तद्दर्शयामि न द्रष्टुं क्षमते भवान् ॥ ९

श्रीभगवान्—बोले—हे राम ! जिस प्रकार यह चराचर जगत् मुझमें वर्तमान है, सो मैं तुमको दिखाता हूं परन्तु तुम उसे देखनेको समर्थ नहीं ॥ ९ ॥

दिव्यं चक्षुः प्रदास्यामि तुभ्यं दशरथात्मज ॥
तेन पश्य भयं त्यक्त्वा मत्तेजोमण्डलं ध्रुवम् ॥ १० ॥

इस कारण उसके देखनेको मैं तुम्हें दिव्यनेत्र देताहूं, उन नेत्रोंसे भय त्यागकर तुम मेरा दिव्य स्वरूप देखो ॥ १० ॥

न चर्मचक्षुषा द्रष्टुं शक्यते मामकं महः ॥
नरेण वा सुरेणापि तन्ममानुग्रहं विना ॥ ११ ॥

नरेन्द्र वा देवता इस मेरे तेज स्वरूपको मेरे अनुग्रह विना चर्म चक्षुसे नहीं देख सकते ॥ ११ ॥

सूत उवाच ।

इत्युक्त्वा प्रददौ तस्मै दिव्यं चक्षुर्महेश्वरः ॥
अथादर्शयदेतस्मै वक्त्रं पातालसंनिभम् ॥ १२ ॥

सूतजी बोले—ऐसा कहकर शिवजीने रामचन्द्रको दिव्य नेत्र दिये और पातालके समान बडा विस्तृत मुख रामचन्द्रको दिखाया ॥ १२ ॥

विद्युत्कोटिप्रभं दीप्तमतिभीमं भयावहम् ॥
तद्दृष्ट्वैव भयाद्रामो जानुभ्यामवनिं गतः ॥ १३ ॥

करोडों बिजलीकी समान प्रकाशमान अतिशय भयदा-

यक भयंकर उस रूपको देखतेही रामचन्द्र जंघाओंके बलसे पृथ्वीमें बैठगये ॥ १३ ॥

प्रणम्य दण्डवद्भूमौ तुष्टाव च पुनः पुनः ॥
अथोत्थाय महावीरो यावदेव प्रपश्यति ॥ १४ ॥

प्रणाम और दंडवत् करके शिवजीको वारंवार प्रसन्न करने लगे फिर महाबली रामचंद्र उठकर जबतक देखते हैं ॥ १४ ॥

वक्रं पुरभिदस्तत्र अन्तर्ब्रह्माण्डकोटयः ॥
चटका इव लक्ष्यन्ते ज्वालामालासमाकुलाः॥ १५॥

तबतक त्रिपुरघाती शिवजीके मुखमें करोडों ब्रह्माण्ड प्रलय कालकी अग्निमें व्याप्त होकर चटका पक्षीके पंखोंके समान दीखे ॥ १५ ॥

मेरुमन्दरविन्ध्याद्या गिरयः सप्त सागराः ॥
दृश्यन्ते चन्द्रसूर्याद्याः पञ्चभूतानि ते सुराः॥१६॥

सुमेरु, मंदराचल, विंध्याचलादि पर्वत, सात समुद्र, चंद्र सूर्यादि सब, ग्रह पांच महाभूत और शिवजीके साथ आये हुए सब देवता ॥ १६ ॥

अरण्यानि महानागा भुवनानि चतुर्दश ॥
प्रतिब्रह्माण्डमेवं तद्दृष्ट्वा दशरथात्मजः ॥ १७॥

वन, बडे २ सर्प, चौदह भुवन इस प्रकार रामचंद्रने प्रत्येक ब्रह्माण्डको देखकर ॥ १७ ॥

सुरासुराणां संग्रामास्तत्र पूर्वापरानपि ॥
विष्णोर्दशावतारांश्च तत्तत्कर्माण्यपि द्विजाः ॥ १८ ॥

उन्हीमें पूर्वकालमें हुआ देवता और असुरोंका संग्राम भी देखा, विष्णुके दश अवतार और उनके कर्तव्य कंसवध रावणवध आदि ॥ १८ ॥

पराभवं च देवानां पुरदाहं महेशितुः ॥
उत्पद्यमानानुत्पन्नान्सर्वानपि विनश्यतः ॥ १९ ॥

युद्धमें देवताओंकी पराजय, शिवजीका त्रिपुरासुरको मारना इसी प्रकार उत्पन्न हुए संपूर्ण जीवोंका लय देखकर ॥ १९ ॥

दृष्ट्वा रामो भयाविष्टः प्रणनाम पुनः पुनः ॥
उत्पन्नतत्त्वज्ञानोऽपि बभूव रघुनन्दनः ॥ २० ॥

रामचंद्र भयभीत हो बारंबार प्रणाम करने लगे। यद्यपि रामचंद्रको तत्त्वज्ञानभी होगया था तथापि भयभीत होगये ॥ २० ॥

अथोपनिषदां सारैरर्थैस्तुष्टाव शंकरम् ॥ २१ ॥

तब उपनिषदोंका सार और अर्थरूप वाणीसे शिवजीकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥

श्रीराम उवाच ।

देव प्रपन्नार्तिहर प्रसीद प्रसीद विश्वेश्वर विश्ववन्द्य ॥ प्रसीद गंगाधर चन्द्रमौले मां त्राहि संसारभयादनाथम् ॥ २२ ॥

श्रीरामचन्द्र बोले—हे विश्वेश्वर ! हे शरणागतदुःखनाशक ! हे चन्द्रशेखर ! प्रसन्न हूजिये और संसारके भयसे मुझ अनाथकी रक्षा कीजिये ॥ २२ ॥

त्वत्तो हि जातं जगदेतदीश त्वय्येव भूतानि वसन्ति नित्यम् ॥ त्वय्येव शंभो विलयं प्रयान्ति भूमौ यथा वृक्षलतादयोऽपि ॥ २३ ॥

हे शंकर ! यह भूमि और इसपर उत्पन्न होनेवाले वृक्षादि सब आपसे ही उत्पन्न हुए हैं यह सब नित्य तुमहीमें स्थित रहते हैं । हे शिव ! अन्तमें यह सब तुम्हीमें लय होजाते हैं ॥ २३ ॥

ब्रह्मेन्द्ररुद्राश्च मरुद्गणाश्च गन्धर्वयक्षाऽसुरसिद्धसङ्घाः ॥ गङ्गादिनद्यो वरुणालयाश्च वसन्ति शूलिंस्तव वक्त्रयन्त्रे ॥ २४ ॥

ब्रह्मा, इन्द्र, एकादश रुद्र, मरुद्गण, गन्धर्व, यक्ष, असुर, सिद्ध, गंगादि नदी, सागर यह सब हे शूल धारणकरनेवाले ! तुम्हारे मुखमें दीखते हैं ॥ २४ ॥

त्वन्मायया कल्पितमिन्दुमौले त्वय्येव दृश्यत्वमुपैति विश्वम् ॥ भ्रान्त्या जनः पश्यति सर्वमेतच्छुक्तौ यथा रौप्यमहिं च रज्जौ ॥ २५ ॥

हे चन्द्रमौले ! तुम्हारी मायासे कल्पित हुआ यह विश्व तुम्हारेही स्वरूपमें प्रतीत होता है, इसे भ्रांतियुक्त होकर

पुरुष इस प्रकारसे देखते हैं जिस प्रकारसे शुक्तिमें रजतका और रस्सीमें सर्पका भ्रम उत्पन्न होता है, वह भ्रांति वैसी नहीं है यह जैसी भ्रांति होती है वह पदार्थ अन्यत्र सिद्ध होता है और नहीं भी होता, जैसे शुक्तिमें रजतकी भ्रांति हुई। परंतु रूपा पदार्थ दूसरे स्थानमें विद्यमान है; तैसे यह जगत् तुम्हारे स्वरूपसे बचकर अन्यत्र नहीं दीखता इसीसे लोक इसको शुक्तिका रजतवत् भ्रम मानते हैं ॥ २५ ॥

तेजोभिरापूर्य जगत्समस्तं प्रकाशमानं कुरुते प्रकाशम् ॥ विना प्रकाशं तव देवदेव न दृश्यते विश्वमिदं क्षणेन ॥ २६ ॥

आप अपने तेजसे सब जगत् व्याप्त और प्रकाश करते हो। हे देवदेव! आपके प्रकाशके विना तो यह जगत् क्षण-मात्रमें अदृश्य हो जाय ॥ २६ ॥

अल्पाश्रयो नैव बृहत्पदार्थं धत्तेऽणुरेको न हि विन्ध्यशैलम् ॥ त्वद्वक्त्रमात्रे जगदेतदस्ति त्वन्माययैवेति विनिश्चिनोमि ॥ २७ ॥

जो पदार्थ थोडे आश्रयवाला है वह बडे पदार्थको धारण करनेमें समर्थ नहीं होता, जिस प्रकार एक अणु विंध्याच-लको धारण नहीं करसकता और तुम्हारे मुखमात्रमें सब जगत् दीखता है। यह सब आपकी माया है, वास्तविक नहीं ऐसा मुझे निश्चय है ॥ २७ ॥

रज्जौ भुजङ्गो भयदो यथैव न जायते नास्ति न चैति नाशम् ॥ त्वन्मायया केवलमात्तरूपं तथैव विश्वं त्वयि नीलकण्ठ ॥ २८ ॥

जिस प्रकारसे रज्जुमें सर्पकी भ्रांति भयदायक होती है, यद्यपि वहां वास्तवमें सर्प उत्पन्न नहीं होता, और भ्रमके नाश होनेपर सबका नाश भी नहीं होता (यथार्थ ही है कि जो उत्पन्न नहीं हुआ उसका नाश होनेवाला नहीं) परंतु यह भय देनेवाला होता है इसी प्रकार तुम्हारी मायासे जिसको अस्तित्व प्राप्त हुआ है ऐसा यह जगत् मिथ्या होनेपर भ्रांतिके कार्यको सत्य उत्पन्न करता है ॥ २८ ॥

विचार्यमाणे तव यच्छरीरमाधारभावं जगतामुपैति ॥ तदप्यवश्यं यदविद्ययैव पूर्णश्चिदानन्दमयो मतस्त्वम् ॥ २९ ॥

जो यह तुम्हारा शरीर जगत्का आधारभूत दीखता है यदि विचार दृष्टिसे देखा जाय तो भी यह अज्ञान दृष्टिकी कल्पना है, कारण कि तुम सच्चिदानन्दरूप और सर्वत्र पूर्ण हो ॥ २९ ॥

पूजेष्टपूर्तादिवरक्रियाणां भोक्तुः फलं यच्छसि विश्वमेव ॥ मृषैतदेवं वचनं पुरारे त्वत्तोऽस्ति भिन्नं न च किञ्चिदेव ॥ ३० ॥

ऐसा है तो कर्मकाण्डप्रतिपादक सर्व श्रुति व्यर्थ हुई, प

ऐसा नहीं । पूजा यज्ञ इष्टापूर्त दान अध्ययनादि कर्मोंका फल तुम कर्ताओंको देते हो, यह कर्मकाण्डपर विश्वास रखनेका प्रमाण है, परन्तु महापुण्योंके उदयसे जब ब्रह्मका साक्षात्कार होता है और यह सब प्रपंच तुमसे अभिन्न दीखने लगता है, तब तुम क्या कर्मोंका फल देते हो ? अर्थात् नहीं देते तब कर्मकाण्डप्रतिपादक कथा असिद्ध हो जाती है ॥ ३० ॥

अज्ञानमूढा मुनयो वदन्ति पूजोपचारादिबहिष्क्रियाभिः ॥ तोषं गिरीशो भजतीति मिथ्या कुतस्त्वमूर्तस्य तु भोगलिप्सा ॥ ३१ ॥

ज्ञानहीन अविचारी पुरुषही पूजा यज्ञ आदि बाह्य कर्मोंसे शिव संतुष्ट होते हैं ऐसा कहते हैं परन्तु यह ठीक नहीं कारण कि जो अमूर्त परिमाणरहित और अनन्त है उसको भोगकी इच्छा नहीं होती ॥ ३१ ॥

किञ्चिद्दलं वा चुलुकोदकं वा यस्त्वं महेश प्रतिगृह्य दत्से ॥ त्रैलोक्यलक्ष्मीमपि यज्जनेभ्यः सर्वं त्वविद्याकृतमेव मन्ये ॥ ३२ ॥

इसी प्रकार किंचित् बेलपत्र वा चुल्लुभर जल जो प्रीतिसे आपको देता है वह प्रीतिसे स्वीकार करके आप उसे स्वराज्यपद देते हो यह भी मायासे कल्पित है ऐसा मेरा निश्चय है ॥ ३२ ॥

व्याप्नोषि सर्वा विदिशो दिशश्च त्वं विश्वमेकः

पुरुषः पुराणः ॥ नष्टेऽपि तस्मिंस्तव नास्ति हानिर्घटे विनष्टे नभसो यथैव ॥ ३३ ॥

तुमहीं एक पुराण पुरुष सम्पूर्ण दिशा विदिशा और विश्वमें व्याप्त हो, इस जगत्के नाश होनेमें भी तुम्हारी हानि नहीं हो सक्ती, जिस प्रकार घटके नाश होनेसे घटमें व्यापी आकाशकी हानि नहीं हो सक्ती, इसी प्रकार जगत्के नाशसे तुम्हारी कुछ हानि नहीं ॥ ३३ ॥

यथैकमाकाशगमर्कबिम्बं क्षुद्रेषु पात्रेषु जलान्वितेषु ॥ भजत्यनेकप्रतिबिम्बभावं तथा त्वमन्तःकरणेषु देव ॥ ३४ ॥

जिस प्रकार आकाशमें एकही सूर्यका बिंब जल भरे हुए छोटे पात्रोंमें अनेक बिंबत्वको प्राप्त होता है अर्थात् अनेक रूप दीखते हैं इसी प्रकारसे आप एक होकर भी सबके अंतःकरणमें अनेकरूपसे विराजते हो ॥ ३४ ॥

संसर्जने वाऽप्यवने विनाशे विश्वस्य किञ्चित्तव नास्ति कार्यम् ॥ अनादिभिः प्राणभृतामदृष्टैस्तथापि तत्स्वप्नवदातनोषि ॥ ३५ ॥

संसारके उत्पत्ति पलन और नाश होनेमें भी तुम्हारा कुछ कर्तव्य नहीं है, केवल अनादि सिद्ध देहधारियोंके कर्मानुसार स्वप्नवत् तुम सब कार्य करते हो, जीव ईश्वरमें केवल बिंब और प्रतिबिंबकी समान अन्तर है ॥ ३५ ॥

स्थूलस्य सूक्ष्मस्य जडस्य भोगो देहस्य शंभो न चिदंशिनोऽस्ति ॥ अतस्त्वदारोपणमातनोति श्रुतिः पुरारे सुखदुःखयोः सदा ॥ ३६ ॥

हे शंभो ! स्थूल और सूक्ष्म दोनों जड देहोंमें आत्मतत्त्वके सिवाय दूसरा चैतन्य अंश नहीं है, हे पुरमथन ! सुख दुःख जो दोनो देहको होते हैं उनकी कहनेवाली श्रुति केवल आपमें आरोप करती है, वास्तविक नहीं ॥ ३६ ॥

नमः सच्चिदाम्भोधिहंसाय तुभ्यं नमः कालकालाय कालात्मकाय ॥ नमस्ते समस्ताघसंहारकर्त्रे नमस्ते मृषा चित्तवृत्त्येकभोक्त्रे ॥ ३७ ॥

हे भगवन् ! सच्चिदानन्दरूप समुद्रमें हंसरूप नीलकण्ठ कालस्वरूप भक्तजनोंके संपूर्ण पातक दूर करनेवाले और सबके साक्षी आपके वास्ते नमस्कार है ॥ ३७ ॥

सूत उवाच ।

एवं प्रणम्य विश्वेशं पुरतः प्राञ्जलिः स्थितः ॥ विस्मितः परमेशानं जगाद रघुनन्दनः ॥ ३८ ॥

सूतजी बोले—इस प्रकार विश्वेश्वरको प्रणाम कर, हाथ जोड विस्मित हो रामचन्द्र परमेश शिवजीसे बोले ॥ ३८ ॥

श्रीराम उवाच ।

उपसंहर विश्वात्मन्विश्वरूपमिदं तव ॥ प्रतीतं जगदैकात्म्यं शंभो भवदनुग्रहात् ॥ ३९ ॥

श्रीरामचन्द्र बोले-हे विश्वात्मन् ! यह अपना विश्वरूप आप उपसंहार करिये । हे शंकर ! आपके अनुग्रहसे आपमें एकत्र स्थित सब जगत्को देखकर मुझे प्रतीति हुई ॥ ३९ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पश्य राम महाबाहो मत्तो नान्योऽस्ति कश्चन ॥

श्रीभगवान् बोले-हे महाभुज ! रामचन्द्र ! देखो मुझसे दूसरा कोई नहीं है ।

सूत उवाच ।

इत्युक्त्वैवोपसंजह्रे स्वदेहे देवतादिकान् ॥
मीलिताक्षः पुनर्हर्षाद्यावद्रामः प्रपश्यति ॥ ४० ॥

सूतजी बोले-ऐसा कहकर शिवाजीने अपने देहमेंसे देवतादिकोंको गुप्त किया, अर्थात् विश्वरूप छिपा लिया ॥ ४० ॥

तावदेव गिरेः शृङ्गे व्याघ्रचर्मोपरि स्थितम् ॥
ददर्श पञ्चवदनं नीलकण्ठं त्रिलोचनम् ॥ ४१ ॥

आँख खोल फिर जो रामचन्द्र प्रसन्न होकर देखते हैं इतनेही समयमें पर्वतके शृंगपर व्याघ्र चर्मपर स्थित पंचमुख नीलकण्ठ त्रिलोचन शिवजीको देखा ॥ ४१ ॥

व्याघ्रचर्माम्बरधरं भूतिभूषितविग्रहम् ॥
फणिकङ्कणभूषाढ्यं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥ ४२ ॥

जो व्याघ्रचर्मका वस्त्र ओढे, शरीरमें विभूति लगाये हैं, सर्पके कंकण पहरे, नागका यज्ञोपवीत धारे ॥ ४२ ॥

व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च विद्युत्पिङ्गजटाधरम् ॥
एकास्यं चन्द्रमौलिं वरेण्यमभयप्रदम् ॥४३॥

व्याघ्र चर्मकाही वस्त्र ओढे बिजलीकी समान पीली जटा धारे इकले मस्तकपर चन्द्रमा धारे श्रेष्ठ भक्तोंके अभय देनेहारे ॥ ४३ ॥

चतुर्भुजं खण्डपरशुमुग्रहस्तं जगत्पतिम् ॥
अथाज्ञया पुरस्तस्य प्रणम्योपाविशेत्प्रभुः ॥४४॥

चार भुजा शत्रुनाशक परशा धारण किये सब जगत्के पति शिवजीको देख उनकी आज्ञामें मन लगाये प्रणाम करके रामचन्द्र स्थित हुए ॥ ४४ ॥

अथाह रामं देवेशो यद्यत्प्रष्टुमभीप्ससि ॥
तत्सर्वं पृच्छ राम त्वं मत्तो नान्योऽस्ति ते गुरुः४५

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्म० योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे विश्वरूप-दर्शनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

तब शिवजी, रामचन्द्रसे बोले, जो जो तुम्हें पूछनेकी इच्छा है वह तुम सब पूछो । हे राम ! मेरे सिवाय दूसरा कोई तुम्हारा गुरु नहीं है ॥ ४५ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवराघवसंवादे पं. ज्वालाप्रसाद मिश्र-कृतभाषाटीकायां विश्वरूपदर्शनं नाम सप्तमोऽध्यायः ॥ ७ ॥

श्रीराम उवाच ।

पाञ्चभौतिकदेहस्य चोत्पत्तिर्विलयस्थितिः ॥
स्वरूपं च कथं देव भगवन्वक्तुमर्हसि ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्र बोले-पंचभूतके देहकी उत्पत्ति स्थिति नाश किस प्रकारसे होता है और इसका स्वरूप क्या है ? हे भगवन् ! विस्तारपूर्वक आप मुझसे कहिये ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

पंचभूतैः समारब्धो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः ॥
तत्र प्रधानं पृथिवी शेषाणां सहकारिता ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले-पृथ्वी आदि पंचभूतोंसे बना आ... देह है इसमें पृथ्वी प्रधान है और दूसरे चार इसमें मिले ... अर्थात् सहकारी हैं ॥ २ ॥

जरायुजोऽण्डजश्चैव स्वेदजश्चोद्भिज्जस्तथा ॥
एवं चतुर्विधः प्रोक्तो देहोऽयं पाञ्चभौतिकः ॥ ३ ॥

जरायुज, अंडज, स्वेदज और उद्भिज्ज यह पांचभौतिक देहके चार भेद हैं ॥ ३ ॥

मानसस्तु परः प्रोक्तो देवानामेव स स्मृतः ॥
तत्र वक्ष्ये प्रथमतः प्रधानत्वाज्जरायुजम् ॥ ४ ॥

और मानसिक उत्पत्ति जो कहाती है वह पांचवीं है ... देवसर्ग कहते हैं, उन चारोंमें जरायुज प्रधान है, सो प्रथ... उसीका वर्णन करते हैं ॥ ४ ॥

शुक्रशोणितसंभूता वृत्तिरेव जरायुजः ॥
स्त्रीणां गर्भाशये शुक्रमृतुकाले विशेद्यदा ॥ ५ ॥

स्त्रीके रज पुरुषके बीजसे जरायुजकी उत्पत्ति होती है जिस समय ऋतुकालमें स्त्रीके गर्भाशयमें पुरुषका वीर्य प्रवेश होता है ॥ ५ ॥

योषितो रजसा युक्तं तदेव स्याज्जरायुजम् ॥
बाहुल्याद्रजसा स्त्री स्याच्छुक्राधिक्ये पुमान्भवेत् ६

स्त्रीका रज मिलित होता है तभी जरायुजकी उत्पत्ति होती है। स्त्रीका रज अधिक होनेसे कन्या और वीर्य अधिक होनेसे पुरुषकी उत्पत्ति होती है ॥ ६ ॥

शुक्रशोणितयोः साम्ये जायते च नपुंसकः ॥
ऋतुस्नाता भवेन्नारी चतुर्थे दिवसे ततः ॥
ऋतुकालस्तु निर्दिष्ट आषोडशदिनावधि ॥ ७ ॥

और शुक्र शोणित समान होनेसे नपुंसक होता है। जब स्त्री ऋतुस्नान कर चुके तब चौथे दिनसे सोलह रात्रितक ऋतुकालकी अवधि कही है ॥ ७ ॥

तत्रायुग्मदिने स्त्री स्यात्पुमान्युग्मदिने भवेत् ॥८॥

उसमें विषम दिन पांचवें सातवें नववें दिनमें स्त्री और युग्म दिनमें पुरुषकी उत्पत्ति होती है ॥ ८ ॥

षोडशे दिवसे गर्भो जायते यदि सुभ्रुवः ॥
चक्रवर्ती भवेद्राजा जायते नात्र संशयः ॥ ९ ॥

जो सोलहवीं रात्रिमें स्त्रीके गर्भ रहता है, तो चक्रवर्ती राजा उत्पन्न होता है इसमें संदेह नहीं ॥ ९ ॥

ऋतुस्नाता यस्य पुंसः साकांक्षं मुखमीक्षते ॥
तदाकृतिर्भवेद्गर्भस्तत्पश्येत्स्वामिनो मुखम् ॥१०॥

ऋतुमें स्नान करके जो स्त्री कामातुर हो जिस पुरुषका मुख देखती है, उसी आकृतिका गर्भ होता है, इसी कारणसे स्त्री उस दिन स्वामीका मुख देखे ॥ १० ॥

याऽस्ति चर्मावृतिः सूक्ष्मा जरायुः सा निगद्यते ॥
शुक्रशोणितयोर्योगस्तस्मिन्नेव भवेद्यतः ॥
तत्र गर्भो भवेद्यस्मात्तेन प्रोक्तो जरायुजः ॥११॥

स्त्रीके उदरमें एक पेशी चमडा निर्मित होता है उसे जरायु कहते हैं, जिस कारणसे शुक्र और शोणितका योग उसी गर्भमें होता है इसी कारणसे उसे जरायुज कहते हैं ॥ ११ ॥

अण्डजाः पक्षिसर्पाद्याः स्वेदजा मशकादयः ॥
उद्भिज्जास्तृणगुल्माद्या मानसाश्च सुरर्षयः ॥१२॥

सर्प और पक्षी आदि जीव अंडज कहलाते हैं, मशकादि स्वेदज कहलाते हैं, वृक्षगुल्मादि उद्भिज्ज कहाते हैं और देवादि आदि मानसिक कहाते हैं ॥ १२ ॥

जन्मकर्मवशादेव निषिक्तं स्मरमन्दिरे ॥
शुक्रं रजःसमायुक्तं प्रथमे मासि तद्द्रवम् ॥ १३ ॥

अपने पूर्वजन्मके कर्मवशसे यह प्राणी स्त्रीके गर्भाशयमें प्राप्त होकर शुक्र शोणितके मिलनेसे प्रथममासमें शिथिल रहताहै १३

कललं बुद्बुदं तस्मात्ततः पेशी भवेदिदम् ॥
पेशी घनं द्वितीये तु मासि पिण्डः प्रजायते॥१४॥

कुछ दिनोंमें उसकी बुदबुदकी आकृति होने लगती है, कुछ दिनोंमें जेरसी होती है इस कारण उसमें दहीकी समान कुछ गाढापन आता है फिर कुछ दिनमें उसकी पेशी (मांस पिंड) बनती है । इस प्रकार शुक्र शोणित संयोग होते हुए एक मास हो जाता है, दूसरे मासमें मांसपिंड बनता है ॥ १४ ॥

करांघ्रिशीर्षकादीनि तृतीये संभवन्ति हि ॥
अविभक्तिश्च जीवस्य चतुर्थे मासि जायते॥ १५॥

तृतीयमासमें शिर, हाथ आदि उत्पन्न होते हैं और जीवका आश्रय लिंगदेह चौथे महीनेमें उत्पन्न होता है ॥ १५ ॥

ततश्चलति गर्भोऽपि जनन्या जठरे स्वतः ॥
पुत्रश्चेद्दक्षिणे पार्श्वे कन्या वामे च तिष्ठति॥१६॥

तब यह गर्भ माताके उदरमें चलायमान होने लगता है पुत्र दक्षिणपार्श्व और कन्या वामपार्श्वमें स्थित होती है ॥ १६ ॥

नपुंसकस्तूदरस्य भागे तिष्ठति मध्यतः ॥
अतो दक्षिणपार्श्वे तु शेते माता पुमान्यदि ॥१७॥
अङ्गप्रत्यङ्गभागाश्च सूक्ष्माः स्युर्युगपत्तदा ॥
विहाय श्मश्रुदन्तादीञ्जन्मानन्तरसंभवान् ॥१८॥

और नपुंसक उदरके मध्यभागमें स्थित होता है। इस कारण दक्षिणपार्श्वमें जन्म लेनेके अनन्तर होनेवाले श्मश्रु तथा दन्तादिको छोडकर सब अंग प्रत्यंगके भाग॥ १७॥ १८॥

चतुर्थे व्यक्तता तेषां भावानामपि जायते ॥
पुंसां स्थैर्यादयो भावा भीरुत्वाद्यास्तु योषिताम् १९

एक साथ चौथे मासमें होजाते हैं। पुरुषोंके गंभीरता स्थिरतादि धर्म और स्त्रियोंके चञ्चलतादि धर्म चौथे मासमें उत्पन्न हो जाते हैं जो सूक्ष्मरूपसे रहते हैं॥ १९॥

नपुंसके च ते मिश्रा भवंति रघुनन्दन ॥
मातृजं चास्य हृदयं विषयानभिकांक्षति ॥ २०॥
ततो मातुर्मनोऽभीष्टं कुर्याद्गर्भाभिवृद्धये ॥
तां च द्विहृदयां नारीमाहुर्दौहृदिनीं ततः॥ २१॥

और नपुंसक गर्भके स्त्री पुरुषोंके मिले हुए धर्म गर्भमें उत्पन्न होते हैं और माताके हृदयके सन्निकटही इसका हृदय होकर जिस वस्तुकी माता इच्छा करती है उसी वस्तुकी यह इच्छा करता है इस कारण गर्भकी वृद्धिके निमित्त माताकी इच्छा पूर्ण करनी चाहिये और इसीसे गर्भवती स्त्रीको दोहदवती अर्थात् दो हृदयवाली कहते हैं॥ २०॥ २१॥

अदानाद्दोहृदानां स्युर्गर्भस्य व्यङ्गतादयः ॥
मातुर्यद्विषये लोभस्तदार्तो जायते सुतः॥ २२॥

और उसकी इच्छा पूर्ण न होनेसे गर्भमें निर्बलता, बुद्धि-हीनता व्यंगताआदि दोष हो जाते हैं । और माताका जिन विषयोंमें चित्त होता है उन विषयोंमें ही आर्त वह पुरुष होता है, इसलिये गर्भिणीकी इच्छा पूर्ण करे ॥ २२ ॥

प्रबुद्धं पञ्चमे चित्तं मांसशोणितपुष्टता ॥
षष्ठेऽस्थिस्नायुनखरकेशलोमविविक्तता ॥ २३ ॥

पांचवें महीनेसे चित्त बढता है तथा मांस और रक्तकी पुष्टि होती है, छठे महीनेमें अस्थि स्नायु और नख मस्तकके केश तथा शरीरके लोम प्रगट होते हैं ॥ २३ ॥

बलवर्णौ चोपचितौ सप्तमे त्वङ्गपूर्णता ॥
पादान्तरितहस्ताभ्यां श्रोत्ररंध्रे पिधाय सः ॥२४॥

सातवें मासमें बल शरीरका वर्ण तथा सब अवयवोंकी पूर्णता होती है और वह गर्भका बालक घुटनोंमें कोनी धर हाथोंसे कान ढके ॥ २४ ॥

उद्विग्नो गर्भसंवासादास्ते गर्भभयान्वितः ॥२५ ॥

और गर्भवाससे व्याकुल होकर भयभीत हुआसा स्थित होता है ॥ २५ ॥

आविर्भूतप्रबोधोऽसौ गर्भदुःखादिसंयुतः ॥
हा कष्टमिति निर्विण्णः स्वात्मानं शोशुचत्यथ२६

उस समय इसको अनेक जन्मोंकी सुधि हो जाती है तब

बडा दुःखी होता है और हा ! कष्टकी बात है ऐसे कहता हुआ दुःखी होता अपने आत्माको शोचता है ॥ २६ ॥

अनुभूता महासह्याः पुरा मर्मच्छिदोऽसकृत् ॥
करंभवालुकास्तप्ता दह्यन्ते च सुखाशयाः ॥२७॥

वह असह्य और मर्मभेदी यातनाको प्राप्त होकर वारंवार कष्ट पाता है जिस प्रकारसे तपाये रेतमें किसीको डाल दो उसको जो वेदना होती है ऐसी वेदनाको वह प्राप्त होता है और दुःख भोगता है ॥ २७ ॥

जठरानलसंतप्ताः पित्ताख्यरसविप्रुषः ॥
गर्भाशये निमग्नं तु दहन्त्यतिभृशं तु माम् ॥२८॥

गर्भवासके दुःख यह हैं प्रथम गर्भवासकी अग्निसे (जो जठराग्नि कहाती है) सन्तप्त होकर कहता है कि यह ज्वाला मुझको अत्यन्त पीडित करती है ॥ २८ ॥

औदर्यक्रिमिवक्त्राणि कूटशाल्मलिकण्टकैः ॥
तुल्यानि च तुदन्त्यार्तं पार्श्वास्थिक्रकचार्दितम् २९

इसी प्रकार उदरके कीडे जब काटते हैं तो विदित होता है कि इनके मुख कूटशाल्मलिके काँटेके समान तीक्ष्ण हैं और यह मुझको अत्यन्त पीडित करते हैं ॥ २९ ॥

गर्भे दुर्गन्धभूयिष्ठे जठराग्निप्रदीपिते ॥
दुःखं मयाप्तं यत्तस्मात्कनीयः कुम्भपाकजम् ३०॥

गर्भकी बडी भारी दुर्गंध और जठराग्निकी ज्वालासे जो

मुझको दुःख प्राप्त हुआ है उससे कुम्भीपाक नरकका दुःख कम है ॥ ३० ॥

पूयासृक्श्लेष्मपायित्वं वान्ताशित्वं च यद्भवेत् ॥
अशुचौ कृमिभावश्च तत्प्राप्तं गर्भशायिना ॥ ३१ ॥

मवाद, रक्त, कफ, अमंगल पदार्थही पान करने और वांति भक्षण करनेको मिलती है, अशुचि पदार्थ मल मूत्रादिमें रहनेसे गर्भमें स्थित प्राणी कीडा ही होजाता है ॥ ३१ ॥

गर्भशय्यां समारुह्य दुःखं यादृङ् मयापि तत् ॥
नातिशेते महादुःखं निःशेषं नरकेषु तत् ॥ ३२ ॥

जो दुःख गर्भशय्यामें सोकर मैंने पाया है वह दुःख सम्पूर्ण नरकोंमेंभी पडकर प्राप्त नहीं होता है ॥ ३२ ॥

एवं स्मरन्पुरा प्राप्ता नानाजातीश्च यातनाः ॥
मोक्षोपायमपि ध्यायन्वर्ततेऽभ्यासतत्परः ॥ ३३ ॥

इस प्रकारसे पूर्वकालमें प्राप्त हुई अनेक प्रकारकी यातनाओंको स्मरण करता हुआ मुक्त होनेका उपाय सोचता पही अभ्यास करता रहता है ॥ ३३ ॥

अष्टमे त्वक्छ्रुती स्यातामोजस्तेजश्च हृद्भवम् ॥
शुद्धमापीतरक्तं च निमित्तं जीवितं मतम् ॥ ३४ ॥

आठवें महीनेमें त्वचा और श्रुति प्राप्त होती है । इसी प्रकार ओज इन्द्रियशक्ति और तेज शरीरके आरम्भ करने

हारें तथा धातुपरिणामसे होनेहारे हृदयके तेज जीवनके मुख्य कारण हैं वह प्राप्त होते हैं ॥ ३४ ॥

मातरं च पुनर्गर्भं चञ्चलं तत्प्रधावति ॥
ततो जातोऽष्टमे गर्भो न जीवत्योजसोज्झितः॥३५॥

कुछ समयतक अतिशय चंचल होनेके कारण किसी समय माताके हृदयमें चंचलरूपसे रहता है, कभी गर्भाशयमें चपलताको प्राप्त हो जाता है। इसी कारण अष्टम मासमें उत्पन्न हुआ बालक बहुधा नहीं जीता कारण कि वह ओज और तेजसे हीन होता है ॥ ३५ ॥

किंचित्कालमवस्थानं संस्कारात्पीडिताङ्गवत् ॥
समयः प्रसवस्य स्यान्मासेषु नवमादिषु ॥ ३६ ॥

फिर नौवें मासमें प्रसूतिका समय होताहै परन्तु शीघ्र प्रसव होनेका प्रतिबंधक यह है कि, जो कुछ गर्भके प्रारब्ध कर्म हुए वो उसे और कुछकालतक गर्भमें रहना पडता है ॥ ३६ ॥

मातुरस्रवहां नाडीमाश्रित्यान्ववतारिता ॥
नाभिस्थनाडी गर्भस्य मात्राहाररसावहा ॥
तेन जीवति गर्भोऽपि मात्राहारेण पोषितः ॥३७॥

माताकी एक रक्तवाहिनी नाडी नाभिचक्रकी एक नाडीसे मिली हुई है, उसीके द्वारा माताका भक्षण किया अन्न गर्भमें पहुँचता है, इस प्रकार माताके आहारसे पुष्टिको प्राप्त हो यह गर्भ उसीके द्वारा जीवित रहता है ॥ ३७ ॥

अस्थियन्त्रविनिष्पिष्टः पतितः कुक्षिवर्त्मना ॥
मेदोऽसृग्दिग्धसर्वाङ्गो जरायुपुटसंवृतः ॥ ३८ ॥

योनिचक्रमें इसके सम्पूर्ण अंग अस्थियोंसे पिचकर व्यथित होते हैं, तब यह प्रथम कुक्षिसे निकलकर योनिसे बाहर आता है, उस समय इसका शरीर मेदा रुधिरसे लिप्त और जरायुसे आच्छादित रहता है ॥ ३८ ॥

निष्क्रमन्भृशदुःखार्तो रुदन्नुच्चैरधोमुखः ॥
यन्त्रादेव विनिर्मुक्तः पतत्युत्तानशाय्यवः ॥ ३९ ॥

यह प्राणी अत्यन्त दुःखसे पीडित हो नीचेको मुखकर जैसेही योनिचक्रसे निकलता है वैसेही ऊंचे स्वरसे रोता है, इस प्रकार गर्भवासके यन्त्रसे निकलकर दुःखही भोगता है कहीं सुख नहीं मिलता ॥ ३९ ॥

अकिञ्चित्करस्तथा बालो मांसपेशीसमास्थितः ॥
श्वमार्जारादिदंष्ट्रिभ्यो रक्ष्यते दण्डपाणिभिः ॥४०॥

जन्म लेकर यह कुछभी नहीं कर सकता, केवल मांसके पिंडके समान पडा रहता है तब इसके मातापिता दंड हाथमें लिये कुत्ते बिलाव तथा डाढवाले जन्तुओंसे इसकी रक्षा करते हैं ॥ ४० ॥

पितृवद्राक्षसं वेत्ति मातृवड्डाकिनीमपि ॥
पूयं वयं वो वदति दीर्घकष्टं तु शैशवम् ॥ ४१ ॥

उस समय यह ज्ञानशून्यही पिताकीही समान राक्षसकोभी जानता है, तथा डाकिनीकोभी माताकी समान समझता है, पीनेको दुग्ध जानकर पीनेकी अभिलाषा करता है, तात्पर्य यह है कि बाल अवस्थाभी महाकष्टकारक है ॥ ४१ ॥

श्लेष्मणा पिहिता नाडी सुषुम्ना यावदेव हि ॥
व्यक्तवर्णं च वदनं तावद्वक्तुं न शक्यते ॥ ४२ ॥

जबतक सुषुम्नानाडी कफसे आच्छादित रहती है तबतक स्फुट अक्षर और वचन बोलनेको वह समर्थ नहीं होता ॥ ४२ ॥

अतएव च गर्भेऽपि रोदितुं नैव शक्यते ॥ ४३ ॥

इसी कारणसे यह गर्भमेंभी नहीं रो सकता ॥ ४३ ॥

ततोऽथ यौवनं प्राप्य मन्मथज्वरविह्वलः ॥
गायत्यकस्मादुच्चैस्तु तथाकस्माच्च वल्गति ॥४४॥

पीछे युवा अवस्थाके आनेसे कामदेवके ज्वरसे विह्वलहो अकस्मात् ही कभी कुछ गाता है और कभी अपना पराक्रम करने लगता है ॥ ४४ ॥

आरोहति तरून्वेगाच्छान्तानुद्वेजयत्यपि ॥
कामक्रोधमदान्धः सन्न कांश्चिदपि वीक्षते ॥४५॥

कभी अभिमानसे वृक्षोंपर चढता, कभी शांत प्राणियोंको उद्वेजित करता, कभी काम क्रोधके मदसे अन्धा हो किसीको भी नहीं देखता ॥ ४५ ॥

अस्थिमांसशिराढ्याया वामाया मन्मथालये ॥
उत्तानभूतमंडूकपाटितोदरसन्निभे ॥
आसक्तः स्मरबाणार्त आत्मना दह्यते भृशम्॥४६॥

अस्थिमांस और नाडी इनके सिवाय स्त्रीके मन्मथ स्थानमें और क्या है जिसमें कि मेंढकके फाडे हुए पेटकी समान दुर्गंध आती है तथापि उसमें आसक्त हुआ कामबाणसे पीडित हो अपने आत्माको अत्यंत जलाता है ॥ ४६ ॥

अस्थिमांसशिरात्वग्भ्यः किमन्यद्वर्तते वपुः ॥
वामानांमायया मूढो न किंचिद्वीक्षते जगत् ॥४७॥

अस्थि मांस शिरा और त्वचा इसके सिवाय स्त्रीके शरीरमें और क्या है जो यह पुरुष स्त्रियोंमें आसक्त होकर मायासे मूढ होनेके कारण जगत्‌में कुछभी नहीं देखता ॥४७॥

निर्गते प्राणपवने देहो हंत मृगीदृशः ॥
वृथा हि जायते नैव वीक्ष्यते पञ्चषैर्दिनैः ॥४८॥

एक समय प्राणपवन निर्गत होजानेसे भी मृगकेसे नेत्रवालीका यह देह व्यर्थताको प्राप्त होता है और पांच छः दिन बीतनेपर फिर वह देह दीखता भी नहीं ॥ ४८ ॥

महापरिभवस्थानजरां प्राप्यातिदुःखितः ॥
श्लेष्मणापिहितोरस्को जग्धमन्नं न जीर्यते॥४९॥

इस प्रकार युवा अवस्थामें दुःख भोगने उपरांत वृद्धावस्थाका दुःख प्रारंभ होता है तब यह महानिरादरके स्थान

जराको प्राप्त होकर महादुःखी होता है, इसका हृदय कफसे व्याप्त होजाता है और खाया हुआ अन्न भी जीर्ण नहीं होता ४९

सन्नदन्तो मन्ददृष्टिः कटुतिक्तकषायभुक् ॥
वातभुग्नकटिग्रीवः करोरुचरणोऽक्षमः ॥ ५० ॥

दांत गिर पडते हैं, दृष्टि मंद हो जाती है, तथा अनेक प्रकारके रोग होनेके कारण कटु तिक्त कषाय औषधियोंका सेवन करता है, वायुसे कमर टेढी होजाती है, कटि गर्दन हाथ जंघा चरण यह निर्बल होजाते हैं ॥ ५० ॥

गदायुतसमाविष्टः परित्यक्तः स्वबन्धुभिः ॥
निःशौचो मलदिग्धांग आलिङ्गितवरोषितः ५१॥

तब सहस्रों रोग इसके शरीरमें लिपट जाते हैं बंधु तिरस्कार करते हैं (दोहा–सींग झडे औ खुर घिसे, पीठ बोझ नहिं लेय। ऐसे बूढे बैलको, कौन बांध भुस देय ॥) तब यह पवित्रतारहित हो मलसे व्याप्त शरीर होनेके कारण नखशिखपर्यंत सब शरीरोंसे सन्तप्त होता है ॥ ५१ ॥

ध्यायन्नसुलभान्भोगान्केवलं वर्ततेऽचलः ॥
सर्वेन्द्रियक्रियालोपाद्धास्यते बालकैरपि ॥ ५२ ॥

तथापि ईश्वरका ध्यान नहीं करता और शय्या श्रेष्ठ भोजन आदि दुर्लभ भोगोंका ध्यान करता हुआ स्थित होता है इसके हाथ पैर कांपने लगते हैं, सब इन्द्रियोंकी शक्ति कुण्ठित हो जाती है और कोई सामर्थ्य न रहनेके कारण बालक भी इसकी हँसी करते हैं ॥ ५२ ॥

ततो मृतिजदुःखस्य दृष्टान्तो नोपलभ्यते ॥
यस्माद्बिभ्यन्तिभूतानिप्राप्तान्यपिपरांरुजम् ॥९३॥

फिर इसके आगे मरणकालके दुःखका कोई दृष्टांतही नहीं, दरिद्रादि पीडा रोगादिपीडा कितनीही प्राप्त हो उसको कुछ न गिनकर एक मरणके भयसे सबही भय भीत होते हैं ॥ ९३ ॥

नीयते मृत्युना जंतुः परिष्वक्तोऽपि बंधुभिः ॥
सागरान्तर्जलगतो गरुडेनेव पन्नगः ॥ ९४ ॥

बन्धुओंसे घिरे हुए प्राणीको मृत्यु ले जाती है जिस प्रकार समुद्रमें प्राप्त हुए सर्पको गरुड लेजाता है ॥ ९४ ॥

हा कान्ते हा धनं पुत्राः क्रन्दमानः सुदारुणम् ॥
मण्डूक इव सर्पेण मृत्युना नीयते नरः ॥ ९५ ॥

हा प्रिये ! हा धन ! हा पुत्रो ! इस प्रकार दारुण विलाप करते हुए इस पुरुषको मृत्यु इस प्रकार लेजाता है जैसे सर्प मेंढकको लेजाता है ॥ ९५ ॥

मर्मसूत्कृष्यमाणेषु मुच्यमानेषु संधिषु ॥
यद्दुःखं म्रियमाणस्य स्मर्यतां तन्मुमुक्षुभिः ॥९६॥

सम्पूर्ण मर्मस्थानोंके टूटने और शरीरके अवयवोंकी संधियोंको भग्न होनेसे जो दुःख मरनेवालेको होता है वह मुमुक्षुओंको स्मरण करना चाहिये, इसके स्मरण करनेसे संसारसे

वैराग्य होकर आवागमनसे छूटनेके निमित्त नारायणके चरणोंमें ध्यान लगेगा॥ ५६ ॥

हृष्टावाक्षिप्यमाणायां संज्ञया ह्रियमाणया ॥
मृत्युपाशेन बद्धस्य त्राता नैवोपलभ्यते ॥ ५७ ॥

यमदूतोंके दृष्टि आकर्षण करने और चेतना लुप्त हो जानेसे कालपाशमें बन्धेका कोई रक्षक नहीं होता ॥ ५७ ॥

संरुध्यमानस्तमसा महच्चित्तमिवाविशन् ॥
उपाहूतस्तदा ज्ञातीनीक्षते दीनचक्षुषा ॥ ५८ ॥

तब यह अज्ञानसे युक्त हो महत् चित्तमें प्रवेश होनेसे नहीं बोलता और जब भार्या पुत्रादि जातिके लोग पुकारते हैं वो उत्तर न देकर दीन नेत्रोंसे देखने लगता है ॥ ५८ ॥

अयस्पाशेन कालेन स्नेहपाशेन बन्धुभिः ॥
आत्मानं कृष्यमाणं तं वीक्षते परितस्तथा ॥५९॥

तब इस जीवको लोहनिर्मित कालपाशसे यमदूत खैंचते हैं एक ओरसे बन्धुओंका स्नेह खैंचता है तब यह। कुछ नहीं कर सकता तटस्थरूपसे देखता है ॥ ५९ ॥

हिक्कया बाध्यमानस्य श्वासेन परिशुष्यतः ॥
मृत्युना कृष्यमाणस्य न खल्वस्ति परायणम् ६०॥

हिचकी बढने और श्वास रुकने तथा तालुके सूखनेसे जब मृत्युके पकडे हुएका कोई आश्रय नहीं होता ॥ ६० ॥

संसारयन्त्रमारूढो यमदूतैरधिष्ठितः ॥
क्व यास्यामीति दुःखार्तः कालपाशेन योजितः ॥ ६१ ॥

संसाररूपी चक्रमें आरूढ हुआ यमदूतोंसे घिरा कालफांसीमें बन्धा महादुःखी हो मैं कहां जाऊं इस प्रकारसे वह जीव विचार करता है ॥ ६१ ॥

किं करोमि क्व गच्छामि किं गृह्णामि त्यजामि किम् ॥ इति कर्तव्यतामूढः कृच्छ्राद्देहात्त्यजत्यसून् ॥ ६२ ॥

क्या करूं, कहां जाउं, क्या ग्रहण करूं, क्या त्यागदूं इस प्रकार चिन्तन करता कर्तव्यतासे मूढ हो शीघ्रही प्राणोंको त्यागता है ॥ ६२ ॥

यातनादेहसंबद्धो यमदूतैरधिष्ठितः ॥
इतो गत्वानुभवति या याश्ता यमयातनाः ॥
तासु यल्लभते दुःखं तद्वक्तुं क्षमते कुतः ॥ ६३ ॥

मार्गमें यम दूतोंसे घसीटा हुआ यातनाकी देहमें प्राप्त होकर यहांसे जाकर जिन जिन यमयातनाओंका दुःख भोगता है उन्हें कहनेको कौन समर्थ है ॥ ६३ ॥

कर्पूरचन्दनाद्यैस्तु लिप्यते सततं हि यत् ॥
भूषणैर्भूष्यते चित्रैः सुवस्त्रैः परिधार्यते ॥ ६४ ॥

जिस शरीरको केशर कस्तूरी चन्दन कपूर आदि लगाकर

सदा भूषित किया था जिसे अनेक गहनोंसे शोभित और वस्त्रोंसे आच्छादित किया था ॥ ६४ ॥

अस्पृश्यं जायतेऽप्रेक्ष्यं जीवत्यक्तं सदा वपुः ॥
निष्कासयन्ति निलयात्क्षणंनस्थापयन्त्यपि॥६५॥

वह शरीर प्राणवायुके निर्गत होते ही छूनेके अयोग्य और देखनेके भी अयोग्य होजाता है फिर कोई इसको क्षण मात्र न रखकर घरसे निकालने लगते हैं ॥ ६५ ॥

दह्यते च ततः काष्ठैस्तद्भस्म क्रियते क्षणात् ॥
भक्ष्यते वा शृगालैश्च गृध्रकुक्कुटवायसैः ॥
पुनर्न दृश्यते सोऽपि जन्मकोटिशतैरपि ॥६६॥

तब यह शरीर काष्ठसे जलाकर क्षणमात्रमें भस्म करदिया जाता है (फूलचोझ जिन शिर न सँभारे, तिनके अंग काठ वहुडारे । शिरपीडा जिनकी नहिं हेरी, करत कपाल क्रिया तिन केरी) अथवा शृगाल गृध्र कुत्ते कौए इसको खा जाते हैं फिर यह करोडों जन्मतक भी दृष्टिगोचर नहीं होता है ॥ ६६॥

माता पिता गुरुजनः स्वजनो ममेति मायोपमे जगति कस्य भवेत्प्रतिज्ञा॥ एको यतो व्रजति कर्मपुरः सरोऽयं विश्रामवृक्षसदृशः खलु जीवलोकः ॥६७॥

जादूगरके समान उत्पन्न जादूसरीखे इस जगतमें मेरी माता मेरा पिता मेरे गुरुजन मेरे स्वजन ऐसी कौन प्रतिज्ञा करता है ! जीव केवल कर्मोंकोही लेकर परलोकमें जाता है,

जैसे मार्गमें पथिकोंके विश्रामके लिये छायाका कोई वृक्ष आजाता है, ऐसाही यह मृत्युलोक है ॥ ६७ ॥

सायंसायं वासवृक्षं समेताः प्रातःप्रातस्तेनतेन प्रयान्ति ॥ त्यक्त्वान्योऽन्यं तं च वृक्षं विहंगा यद्वत्तद्वज्ज्ञातयोऽज्ञातयश्च ॥ ६८ ॥

जिस प्रकारसे पक्षी संध्याकालमें वृक्षपर आनकर विश्राम लेते हैं और प्रातःकाल उठकर एक दूसरेको त्याग अपने अभिलषित देशोंमें चले जाते हैं इसी प्रकारसे जाति अजातिके पुरुषोंका समागम है, कर्मानुसार अपने कुटुम्बादिमें जन्म लेकर स्थित होते हैं कर्म समाप्त होते ही अपनी गतिको प्राप्त होते हैं । इससे मनुष्यको उचित है कि, प्राणियोंके समागमको पथिक समाजके समान जाने, यथा (या दुनियामें आयके, छाँड देइ तू ऐंठ । लेना है सो लेइले, उठी जात है पैंठ) ॥ ६८ ॥

मृतिबीजं भवेज्जन्म जन्मबीजं भवेन्मृतिः ॥ घटयन्त्रवदश्रान्तो बंभ्रमीत्यनिशं नरः ॥ ६९ ॥

मृत्युके बीजसे जन्म और जन्मके बीजसे मृत्यु होती है अर्थात् जो उत्पन्न हुआ उसका अवश्य नाश होगा और नाश हुआ अवश्य जन्म लेगा यह प्राणी इसी प्रकार घटीयन्त्रकी समान निरंतर भ्रमण करता रहता है ॥ ६९ ॥

गर्भे पुंसः शुक्रपातायदुक्तं मरणावधि ॥ तदेतस्य महाव्याधेर्मत्तो नान्योऽस्ति भेषजम् ७० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु० शिवराघवसं-
वादे पिण्डोत्पत्तिकथनं नाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

हे रामचंद्र ! गर्भमें वीर्यके प्राप्त होनेसे इस प्रकारसे प्राणीका जन्म और मृत्यु होती है यह महाव्याधि है, जीवन मरण दोनों ही महादुःख होता है इस व्याधिको दूर करनेके निमित्त मेरे सिवाय दूसरी औषधि नहीं (नान्यः पंथा विद्यते अयनायेति श्रुतेः) इस कारण मेरा भजन करना योग्य है ॥ ७० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उत्तरखण्डे शिवगीताया पं० ज्वालाप्रसाद-
मिश्रकृत भा० अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

देहस्वरूपं वक्ष्यामि शृणुष्वावहितो नृप ॥
मत्तो हि जायते विश्वं मयैवैतत्प्रधार्यते ॥ १ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे राजन् ! तुम सावधान होकर सुनो, मैं तुमसे देहका स्वरूप कहता हूं, यह संसार मुझहीसे उत्पन्न होता और मुझहीसे धारण किया जाता है ॥ १ ॥

मय्येवेदमधिष्ठाने लीयते शुक्तिरौप्यवत् ॥
अहं तु निर्मलः पूर्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ॥ २ ॥

और जिस प्रकार भ्रम निवृत्त होनेसे रजत सीपमें लय हो जाती है इसी प्रकार यह जगत् ज्ञानसे मुझमें लय हो जाता है, मैं निर्मल पूर्ण सच्चिदानन्दस्वरूप हूं ॥ २ ॥

असंगो निरहंकारः शुद्धं ब्रह्म सनातनः ॥
अनाद्यविद्यायुक्तः सञ्जगत्कारणतां व्रजेत् ॥ ३ ॥

मैं संगरहित निरहंकार शुद्ध सनातन ब्रह्म हूँ, मैं अनादि-सिद्धि मायासे युक्त होकर जगत्का कारण होता हूं ॥ ३ ॥

अनिर्वाच्या महाविद्या त्रिगुणा परिणामिनी ॥
रजः सत्त्वं तमश्चेति त्रिगुणाः परिकीर्तिताः ॥४॥

मेरी मायाका वर्णन नहीं होसकता उसमें, सत्त्व, रज, तम यह तीन गुण रहते हैं ॥ ४ ॥

सत्त्वं शुक्लं समादिष्टं सुखज्ञानास्पदं नृणाम् ॥
दुःखास्पदं रक्तवर्णं चञ्चलं च रजो मतम् ॥ ५ ॥

सत्त्वगुण शुक्लवर्ण मनुष्योंको सुख और ज्ञानका देनेवाला है और रजोगुणका रक्तवर्ण है, यह चंचल और मनुष्योंको दुःख देनेवाला है ॥ ५ ॥

तमः कृष्णं जडं प्रोक्तमुदासीनं सुखादिषु ॥
अतो मम समायोगाच्छक्तिः स्यात्त्रिगुणात्मिका ॥६॥

तमका कृष्ण वर्ण है, यह जड और सुख दुःखसे उदासीन रहता है इसी कारण मेरे संयोगसे वह त्रिगुणात्मिका माया ॥ ६ ॥

अधिष्ठाने तु मय्येव भजते विश्वरूपताम् ॥
शुक्तौ रजतवद्रज्जौ भुजङ्गो यद्वदेव तु ॥ ७ ॥

मेरेही अधिष्ठानसे इस प्रकार जगत्को रचना करके दिखाती

है, जिस प्रकार अज्ञान शुक्तिमें रजत और रस्सीमें सर्प दिखाई देता है ॥ ७ ॥

आकाशादीनि जायन्ते मत्तो भूतानि मायया ॥
तैरारब्धमिदं विश्वं देहोऽयं पाञ्चभौतिकः ॥ ८ ॥

मुझसे मायाके द्वारा आकाशादिकी उत्पत्ति होती है, मुझसे प्रथम आकाश, आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल, जलसे पृथ्वी उत्पन्न होती है, इन्ही पाँचोंसे उत्पन्न हुआ यह सब देह पंचभूतात्मक कहाता है ॥ ८ ॥

पितृभ्यामशितादन्नात्षट्कोशं जायते वपुः ॥
स्नायवोऽस्थीनि मज्जा च जायन्ते पितृतस्तथा ९॥

पितामाताके भक्षण किये अन्नसे यह षट्कोशात्मक शरीर उत्पन्न होता है, जिसमें स्नायु, अस्थि और मज्जा पिताके कोशसे उत्पन्न होते हैं ॥ ९ ॥

त्वङ्मांसं शोणितमिति मातृतश्च भवन्ति हि ॥
भावाः स्युःषड्विधास्तस्य मातृजाःपितृजास्तथा ॥
रजसा आत्मजाः सत्यसंभूताःस्वात्मजास्तथा १०

त्वचा मांस और रुधिर यह माताके वीर्यसे उत्पन्न होते हैं इसी प्रकार माता और पिता सम्बन्धी षट्कोशात्मक देहमें मातासे उत्पन्न होनेवाले, पितासे उत्पन्न होनेवाले, रजसे उत्पन्न होनेवाले तथा आत्मासे उत्पन्न होनेवाले चार पदार्थ हैं ॥ १० ॥

मृदवः शोणितं मेदो मज्जा प्लीहा यकृद्गुदम् ॥
हृन्नाभीत्येवमाद्यास्तु भावा मातृभवा मताः॥११॥

इसमें रक्त, मेदा, मज्जा, प्लीहा, यकृत, गुदा, हृदय, नाभि इत्यादि मृदु पदार्थ मातासे उत्पन्न होते हैं ॥ ११ ॥

श्मश्रुलोमकचस्नायुशिराधमनयो नखाः ॥
दशनाःशुक्रमित्यादि स्थिराः पितृसमुद्भवाः॥१२॥

श्मश्रु, लोम, केश, स्नायु, शिरा, धमनी, नाडी, नख, दंत, वीर्य आदि स्थिर पदार्थ पिताके संबंधसे होते हैं ॥ १२ ॥

शरीरोपचितिर्वर्णो वृद्धिस्तृप्तिर्बलं स्थितिः ॥
अलोलुपत्वमुत्साह इत्यादि राजसं विदुः ॥१३॥

पुष्टता, वर्ण, वृद्धि, तृप्ति, बल, अवयवोंकी दृढता, अलोलुपता, उत्साह इत्यादि रजसे उत्पन्न होते हैं ॥ १३ ॥

इच्छा द्वेषः सुखं दुःखं धर्माधर्मौ च भावना ॥
प्रयत्नो ज्ञानमायुश्चेन्द्रियाणीत्येवमात्मजाः॥१४॥

इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, धर्म, अधर्म, भावना, प्रयत्न, ज्ञान, आयुष्य, इन्द्रिय इत्यादि ये आत्मज अर्थात् आत्मासे उत्पन्न हुए कहते हैं ॥ १४ ॥

ज्ञानेन्द्रियाणि श्रवणं स्पर्शनं दर्शनं तथा ॥
रसनं घ्राणमित्याहुः पञ्च तेषां तु गोचराः॥१५॥

श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा और घ्राण यह पांच ज्ञानेन्द्रिय कहाते हैं ॥ १५ ॥

शब्दः स्पर्शस्तथा रूपं रसो गंध इति क्रमात् ॥
वाक्कराङ्घ्रिगुदोपस्थान्याहुः कर्मेन्द्रियाणि हि ॥ १६॥

क्रमसेही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, ये पाँच इनके विषय हैं वाणी, हाथ, पैर, गुदा और उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रिय हैं ॥ १६ ॥

वचनोदानगमनविसर्गरतनयः क्रमात् ॥
क्रियास्तेषां मनोबुद्धिरहंकारस्ततः परम् ॥ १७॥
अन्तःकरणमित्याहुश्चित्तं चेति चतुष्टयम् ॥ १८॥

बोलना, लेना, देना, चलना, मलविसर्जन और रति यह क्रमसे पांचों इन्द्रियोंके पांच कार्य हैं, और मन उभयात्मक है मन, बुद्धि, अहंकार और चित्त यह अन्तःकरणके चार भेद हैं ॥ १७ ॥ १८ ॥

सुखं दुःखं च विषयौ विज्ञेयौ मनसः क्रियाः ॥ स्मृति भीतिविकल्पाद्या बुद्धिः स्यान्निश्चयात्मिका ॥ १९॥

सुख और दुःख यह मनका विषय है, स्मृति भय विकल्प इत्यादि मनके कर्म हैं और जो निश्चय करती है उसीको बुद्धि कहते हैं और अहं, मम यह जो अहंकारात्मक मनकी वृत्ति है इसे ही चित्त कहते हैं ॥ १९ ॥

अहंममेत्यहङ्कारश्चित्तं चेतयते यतः ॥
सत्त्वाख्यमन्तःकरणं गुणभेदात्त्रिधा मतम् ॥
सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः सत्त्वात्तु सात्त्विकाः ॥ २०

यह अंतःकरणभी सतोगुणादिके भेदसे तीन प्रकारका है सत, रज, तम यह तीन गुण हैं जब सतोगुण प्रधान होता है तब ॥ २० ॥

आस्तिक्यशुद्धधर्मैकमतिप्रभृतयो मताः ॥
रजसो राजसा भावाः कामक्रोधमदादयः ॥ २१ ॥

आस्तिक्य बुद्धि, स्वच्छता, धर्ममें रुचि इत्यादि सात्त्विक धर्म प्राप्त होते हैं और जब रजोगुण होता है तो काम क्रोध मद इत्यादि होते हैं ॥ २१ ॥

निद्रालस्यप्रमादादिवञ्चनाद्यास्तु तामसाः ॥
प्रसन्नेन्द्रियतारोग्यानालस्याद्यास्तु सत्त्वजाः ॥ २२ ॥

तमोगुणकी प्रधानतामें निद्रा, आलस्य, प्रमाद, वंचना होती है, इन्द्रियोंकी प्रसन्नता, आरोग्य, आलस्यका न होना ये गुण सत्त्वसे उत्पन्न होते हैं ॥ २२ ॥

देहो मात्रात्मकस्तस्मादादत्ते तद्गुणानिमान् ॥
शब्दः श्रोत्रं मुखरता वैचित्र्यं सूक्ष्मता धृतिः ॥ २३ ॥

इन पांच महाभूतोंकी मात्रासे उत्पन्न हुआ यह देह उनके गुणोंको धारण करता है. उनमें शब्द, श्रोत्र, इन्द्रिय, वाणी, कुशलता, लघुता, धैर्य ॥ २३ ॥

बलं च गगनाद्वायोः स्पर्शश्च स्पर्शनेन्द्रियम् ॥
उत्क्षेपणमवक्षेपाकुञ्चने गमनं तथा ॥

८

प्रसारणमितीमानि पञ्च कर्माणि वायुतः ॥२४॥

और बल यह सात गुण आकाशसे इस स्थूल देहमें प्राप्त होते हैं, स्पर्शगुण, त्वगिन्द्रिय, उत्क्षेपण (ऊपरको फेंकना) अवक्षेपण (नीचेको फेंकना) आकुंचन (सकोडना) प्रसारण (फैलाना) गमन (चलना) यह पांच कर्म हैं ॥ २४ ॥

प्राणापानौ तथा व्यानसमानोदानसंज्ञकाः ॥२५॥

प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान यह पांच प्राण हैं ॥२५॥

नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनंजयः ॥
दशेति वायुविकृतीस्तथा गृह्णाति लाघवम् ॥२६॥

नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय ये पांच उपप्राण कहाते हैं, यह एकही वायुके विकारको प्राप्त होनेपर दश नाम धर लिये हैं ॥ २६ ॥

तेषां मुख्यतर प्राणो नाभेः कण्ठादधः स्थितः ॥
चरत्यसौ नासिकयोर्नाभौ हृदयपङ्कजे ॥ २७ ॥

उसमें प्राणपवन मुख्य है जो नाभिसे लेकर कंठतक स्थित रहता है और नासिका नाभि तथा हृदयकमलमें गमन करता है ॥ २७ ॥

शब्दोच्चारणनिश्वासोच्छ्वासादेरपि कारणम् ॥२८॥

शब्दके उच्चारण निश्वास और श्वासादिकका यही कारण है२८

अपानस्तु गुदे मेढ्रे कटिजङ्घोदरेष्वपि ॥
नाभिकण्ठ वृषणयोरूरुजानुषु तिष्ठति ॥

तस्य मूत्रपुरीषादिविसर्गः कर्म कीर्तितम् ॥२९॥

गुद, लिंग, कटि, जंघा, उदर, नाभि, कंठ, अंडकोष, गोडोंकी संधि और जंघाओंमें अपानवायु रहता है, उसका कर्म मूत्र और पुरीषका विसर्जन (त्याग) करना है ॥ २९ ॥

व्यानोऽक्षिश्रोत्रगुल्फेषु जिह्वाघ्राणेषु तिष्ठति ॥
प्राणायामधृतित्यागग्रहणाद्यस्य कर्म च ॥ ३० ॥

नेत्र, कर्ण, पांवके घुटने, जिह्वा तथा नासिका इन पांच स्थानोंमें व्यानवायु रहता है प्राणायाम रेचक, पूरक, कुंभक इसके कर्म हैं ॥ ३० ॥

समानो व्याप्य निखिलं शरीरं वह्निना सह ॥
द्विसप्ततिसहस्रेषु नाडीरन्ध्रेषु संचरन् ॥ ३१ ॥

समानवायु सब शरीरमें व्याप्त होकर जठराग्निके सहित बहत्तर हजार नाडियोंके रन्ध्रमें संचार करता है ॥ ३१ ॥

भुक्तपीतरसान्सम्यगानयन्देहपुष्टिकृत् ॥
उदानः पादयोरास्ते हस्तयोरङ्गसंधिषु ॥ ३२ ॥

भोजन किये और पिये हुए सम्पूर्ण रसोंको देहकी पुष्टिके निमित्त लेकर चरण, हाथ और अंगकी संधियोंमें उदान वायु रहता है ॥ ३२ ॥

कर्मास्य देहोन्नयनोत्क्रमणादि प्रकीर्तितम् ॥
त्वगादिधातूनाश्रित्य पञ्च नागादयः स्थिताः ३३

देहका उठाना, चलाना यह इसका कर्म कहा है, त्वचा, मांस, रक्त, अस्थि और स्नायु इन पांच धातुओंके आश्रय नागादि पांच उपप्राण रहते हैं ॥ ३३ ॥

उद्गारादि निमेषादि क्षुत्पिपासादिकं क्रमात् ॥
तन्द्रीप्रभृति शोकादि तेषां कर्म प्रकीर्तितम् ॥३४॥

डकार, हुचकी यह नाग पवनका कर्म, पलक खोलना लगाना कटाक्ष यह कूर्मका कर्म, भूंख प्यास छींकना कृकलका कर्म, आलस्य निद्रा जंभाई देवदत्तका कर्म, शोक और हास्य धनंजयका कर्म है ॥ ३४ ॥

अग्नेस्तु रोचकं रूपं दीप्तिं पाकं प्रकाशताम् ॥
अमर्षतीक्ष्णसूक्ष्माणामोजस्तेजश्च शूरताम् ॥३५॥

अग्निके धर्म चक्षु कृष्ण, नील, शुक्ल इत्यादि रूप भोजनका पाक, स्वतःप्रकाश, क्रोध, तीक्ष्णपन, कृशता, ओज इन्द्रियोंका तेज, संताप, शूरता ॥ ३५ ॥

मेधावितां तथा दत्ते जलात्तु रसनं रसम् ॥
शैत्यं स्नेहं द्रवं स्वेदं गात्राणि मृदुतामपि ॥३६॥

और बुद्धि ये गुण तेजसे प्राप्त होते हैं, और रसनेन्द्रिय रस शीत, चिकनापन, द्रवत्व, पसीना और सम्पूर्ण अवयवोंमें कोमलता ये धर्म जलमें उत्पन्न होते हैं ॥ ३६ ॥

भूमेर्घ्राणेन्द्रियं गन्धं स्थैर्यं धैर्यं च गौरवम् ॥
त्वगसृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ॥३७॥

घ्राणेंद्रिय, गन्ध, स्थिरता, धैर्य, गुरुत्व ये धर्म पृथ्वीसे उत्पन्न होते हैं. त्वचा, रुधिर, मांस, मेदा, अस्थि, मज्जा और शुक्र ये सात धातु शरीरको धारण करते हैं ॥ ३७ ॥

अन्नं पुंसाशितं त्रेधा जायते जठराग्निना ॥
मलः स्थविष्ठो भागः स्यान्मध्यमो मांसतां व्रजेत् ॥
मनः कनिष्ठो भागः स्यात्तस्मादन्नमयं मनः॥३८॥

पुरुषोंका भक्षण किया अन्न जाठराग्निसे तीन भाग हो जाता है, तिसका स्थूल भाग मल, मध्यभाग मांस और सूक्ष्म भाग मन होता है, इससे मन अन्नमय कहाता है ॥ ३८ ॥

अपां स्थविष्ठो मूत्रं स्यान्मध्यमो रुधिरं भवेत् ॥
प्राणः कनिष्ठो भागः स्यात्तस्मात्प्राणो जलात्मकः॥

जलका स्थूलभाग मूत्र, मध्यभाग रक्त, और कनिष्ठ भाग प्राण कहाता है इससे जलमय प्राण है ॥ ३९ ॥

तेजसोऽस्थि स्थविष्ठः स्यान्मज्जा मध्यमसंभवः ॥
कनिष्ठा वाङ्मता तस्मात्तेजोऽबन्नात्मकं जगत्४०

तेजका स्थूलभाग अस्थि, मज्जा मध्यभाग और वाणी सूक्ष्मभाग है, आशय यह है कि अन्न, उदक और तेजरूप सब जगत है ॥ ४० ॥

लोहिताज्जायते मांसं मेदो मांससमुद्भवम् ॥
मेदसोऽस्थीनि जायन्ते मज्जा चास्थिसमुद्भवा४१

रक्तसे मांस उत्पन्न होता है, मांससे मेदा, मेदसे अस्थि और अस्थिसे मज्जा उत्पन्न होती है ॥ ४१ ॥

नाड्योऽपि मांससंघाणाच्छुक्रं मज्जासमुद्भवम् ॥ ४२ ॥

मांससेही नाडी उत्पन्न होती हैं और मज्जासे वीर्य उत्पन्न होता है ॥ ४२ ॥

वातपित्तकफास्तत्र धातवः परिकीर्तिताः ॥
दशाञ्जलिजलं ज्ञेयं रसस्याञ्जलयो नव ॥ ४३ ॥

वात, पित्त, कफ तीन धातु शरीरमें रहते हैं, शरीरमें दश अंजलि प्रमाण जल रहता है और नौ अञ्जलि रस अर्थात् (अन्न) रहता है ॥ ४३ ॥

रक्तस्याष्टौ पुरीषस्य सप्त स्युः श्लेष्मणश्च षट् ॥
पित्तस्य पञ्च चत्वारो मूत्रस्याञ्जलयस्त्रयः ॥ ४४ ॥

रक्त आठ अञ्जलि, विष्ठा सात अञ्जलि, कफ छः अञ्जलि, पित्त पांच अंजलि और मूत्र चार अञ्जलि रहता है ॥ ४४ ॥

वसाया मेदसो द्वौ तु मज्जा त्वञ्जलिसंमितः ॥
अर्धाञ्जलिस्ततः शुक्रं तदेव बलमुच्यते ॥ ४५ ॥

वसा (चर्बी) तीन अंजलि, मेदा दो अञ्जलि, मज्जा एक अञ्जलि और वीर्य आधी अञ्जलि, रहता है, इसीको बल कहते हैं ॥ ४५ ॥

अस्थ्नां शरीरे संख्या स्यात्षष्टियुक्तं शतत्रयम् ॥

नलजानि कपालानि रुचकास्तरणानि च ॥
नवकानीति तान्याहुः पञ्चधास्थीनि सूरयः॥४६॥

शरीरमें अस्थि तीनसौ साठ, शंख, कपाल, रुचक, आस्तरण और नवक यह पांच प्रकारकी अस्थि होती हैं ॥ ४६ ॥

द्वे शते त्वस्थिसन्धीनां स्यातां तत्र दशोत्तरे ॥
रौरवाः प्रसराः स्कन्दसेचनाः स्युरुलूखलाः॥४७॥

शरीरमें दोसौ दश २१० अस्थियोंकी सन्धी हैं उनके रौरव प्रसर स्कन्दसेचन उलूखल ॥ ४७ ॥

समुद्रा मण्डकाः शंखावर्ता वायसतुण्डकाः ॥
इत्यष्टधा समुद्दिष्टाः शरीरेष्वस्थिसन्धयः॥ ४८॥

समुद्र मण्डक शंखावर्त और वायसतुण्डक यह आठ भेद अस्थियोंकी संधिके हैं ॥ ४८ ॥

सार्धकोटित्रयं रोम्णां श्मश्रुकेशास्त्रिलक्षकाः ॥
देहस्वरूपमेवं ते प्रोक्तं दशरथात्मज ॥
तस्मादसारो नास्त्येव पदार्थो भुवनत्रये ॥ ४९ ॥

साढे तीन करोड सब शरीरपर रोम हैं, और डाढीके बाल तीन लाख हैं हे दशरथकुमार ! इस प्रकार यह देहका रूप तुम्हारे प्रति वर्णन किया, इस देहकी समान निस्सार पदार्थ दूसरा त्रिलोकीमें कोई नहीं है ॥ ४९ ॥

देहेऽस्मिन्नाभिमानेन न महोपायबुद्धयः ॥
अहंकारेण पापेन क्रियन्ते हंत सांप्रतम् ॥ ५० ॥

इस देहको प्राप्त होकर पापबुद्धि पुरुष महाअभिमान करते हैं, और अहंकाररूप पापसे पुत्र नन्द मोक्षका कुछ भी उपाय नहीं करते, यह महाशोककी बात है ॥ ५० ॥

तस्मादेतत्स्वरूपं तु बोद्धव्यं तु मुमुक्षुभिः ॥५१॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे देहस्वरूपनिर्णयो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

इस कारण मुमुक्षुको वैराग्य दृढ होनेके निमित्त यह स्वरूप जानना अवश्य है ॥ ५१ ॥

इति श्रीपद्मपुराणान्तर्गतशिवगीतायां पं० ज्वालाप्रसादमिश्र-कृतभाषाटीकायां शरीरनिरूपणं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

श्रीराम उवाच ।

भगवन्कुत्र जीवोऽसौ जन्तोर्देहेऽवतिष्ठते ॥
जायते वा कुतो जीवः स्वरूपं चास्य किं वद ॥१॥

श्रीरामचन्द्र बोले—हे भगवन् ! इस देहमें यह जीव कहां वर्तमान है, यह कहांसे उत्पन्न होता है और इसका क्या स्वरूप है सो आप कहिये ॥ १ ॥

देहान्ते कुत्र वा याति गत्वा वा कुत्र तिष्ठति ॥
कथमायाति वा देहं पुनर्न यदि वा वद ॥ २ ॥

देहान्तमें यह कहां जाता है और जाकर कहां स्थित होता है

और फिर देहमें किस प्रकार आता है वा नहीं आता ? सो आप कहिये ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

साधु पृष्टं महाभाग गुह्याद्गुह्यतरं हि यत् ॥
देवैरपि सुदुर्ज्ञेयमिन्द्राद्यैर्वा महर्षिभिः ॥ ३ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे महाभाग ! बहुत अच्छी बात पूछी है जो गुप्तसे भी गुप्त है, जिसे इन्द्रादि देवता और ऋषि भी कठिनतासे नहीं जान सकते ॥ ३ ॥

अन्यस्मै नैव वक्तव्यं मयापि रघुनन्दन ॥
त्वद्भक्त्याहं परं प्रीतो वक्ष्याम्यवहितः शृणु ॥४॥

हे रघुनन्दन ! मैंभी यह किसी दूसरेसे नहीं कहना चाहता परन्तु तुम्हारी भक्तिसे प्रसन्न होकर मैं कहता हूं सुनो ॥ ४ ॥

सत्यज्ञानात्मकोऽनन्तः परमानन्दविग्रहः ॥
परमात्मा परंज्योतिरव्यक्तोऽव्यक्तकारणम् ॥ ५ ॥
नित्यो विशुद्धः सर्वात्मा निर्लेपोऽहं निरञ्जनः ॥
सर्वधर्मविहीनश्च न ग्राह्यो मनसापि च ॥ ६ ॥

मैंही सत्यस्वरूप ज्ञानस्वरूप अनन्त परमानन्द परमात्मा परंज्योति मायासे मोहित, जीवोंको न दीखनेहारा, संसारका कारण नित्य विशुद्ध, सम्पूर्णका आत्मा, सर्वान्तर्यामी, निःसंग, क्रियारहित, सब धर्मोंसे परे मनसेभी परे हूं ॥ ५ ॥ ६ ॥

नाहं सर्वेन्द्रियग्राह्यः सर्वेषां ग्राहको ह्यहम् ॥
ज्ञाताहं सर्वलोकस्य मम ज्ञाता न विद्यते ॥ ७ ॥

मुझे कोई इन्द्रिय नहीं ग्रहण करसकती, मैं सम्पूर्णका ग्रहण करनेहारा हूं, मैं सम्पूर्ण लोकका ज्ञाता हूं और मुझे कोई नहीं जानता ॥ ७ ॥

दूरः सर्वविकाराणां परिणामादिकस्य च ॥
यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥ ८ ॥

मैं सम्पूर्ण विकारोंसे रहित हूँ, बाल्य यौवनादि परिणाम आदि विकार भी मुझमें नहीं हैं, जहां मनके सहित जाकर वाणी निवृत्त होजाती है ॥ ८ ॥

आनन्दं ब्रह्म मां ज्ञात्वा न बिभेति कुतश्चन ॥९॥

उस आनन्दब्रह्म मुझको प्राप्त होकर यह प्राणी फिर कहींसेभी भयको प्राप्त नहीं होता है ॥ ९ ॥

यस्तु सर्वाणि भूतानि मय्येवेति प्रपश्यति ॥
मां च सर्वेषु भूतेषु ततो न विजुगुप्सते ॥ १० ॥

जो संपूर्ण प्राणियोंको मुझमें देखता है और मुझे संपूर्ण प्राणियोंमें देखता है, वह निन्दारहित हो जाता है ॥ १० ॥

यत्र सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः ॥
को मोहस्तत्र कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ ११ ॥

जिसको सम्पूर्ण (भूत) प्राणी आत्मारूप दीखते हैं उस सर्वत्र एकरूप देखनेवालेको शोक और मोह नहीं होता ॥ ११ ॥

एवं सर्वेषु भूतेषु गूढात्मा न प्रकाशते ॥
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः १२

यह सम्पूर्ण भूतोंमें गुप्तरूप आत्मा प्रकाशित नहीं होता, परन्तु सम्पूर्णमें वर्तमान है, सूक्ष्मदर्शी श्रवण, मनन, निदिध्यासन साधना करनेवाले पुरुषोंको अग्रबुद्धिसे दीखताहै-दूसरे मनुष्योंको नहीं दीखता है ॥ १२ ॥

अनाद्यविद्यया युक्तस्तथाप्येकोऽहमव्ययः ॥
अव्याकृतब्रह्मरूपो, जगत्कर्ताहमीश्वरः ॥ १३ ॥

अनादि मायासे युक्त निर्विकार अविनाशी एक मैंही नाम रूप रहित ब्रह्म जगत्का कर्ता परमेश्वर हूँ ॥ १३ ॥

ज्ञानमात्रं यथा दृश्यमिदं स्वप्नं जगत्त्रयम् ॥
तद्वन्मयि जगत्सर्वं दृश्यतेऽस्ति विलीयते॥ १४॥

जिस प्रकार अविद्याके साक्षीभूत ज्ञानपर स्वप्नमें त्रिलोकीकी कल्पना की जाती है, इसी प्रकार मुझमें यह सब जगत् उत्पन्न हो दीखता, स्थिति पाता लय होजाता है ॥ १४ ॥

नानाविद्यासमायुक्तो जीवत्वेन वसाम्यहम् ॥
पञ्चकर्मेन्द्रियाण्येव पञ्च ज्ञानेन्द्रियाणि च ॥
मनो बुद्धिरहंकारश्चित्तं चेति चतुष्टयम् ॥ १५ ॥

अनेक प्रकारकी अविद्याके आश्रय होकर जीवरूपसेभी मैंही निवास करता हूँ, पांच कर्मेन्द्रिय और पांच ज्ञानेन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार, चित्त ये चारों ॥ १५ ॥

वायवः पञ्च मिलिता यांति लिङ्ग शरीरताम् ॥
तत्राऽविद्यासमायुक्तं चैतन्यं प्रतिबिम्बितम् ॥ १६ ॥
व्यावहारिकजीवस्तु क्षेत्रज्ञः पुरुषोऽपि च ॥ १७ ॥

पंच प्राण ये सब मिलाकर लिंगशरीरको उत्पन्न करते हैं उसी लिंगशरीरमें अविद्यायुक्त यह चैतन्यका प्रतिबिम्ब पडता है, उसीको व्यवहारमें जीव क्षेत्रज्ञ और पुरुष कहते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

स एव जगतां भोक्ता नाद्ययोः पुण्यपापयोः ॥
इहामुत्र गतिस्तस्य जाग्रत्स्वप्नादि भोक्तृता ॥ १८ ॥

वही जीव अनादि कालसे पुण्य पापसे निर्मित हुए स्थावर जंगमादि देहोंमें वास कर शुभाशुभ कर्मका फल भोक्ता है उसीकी परलोकगति होती, तथा वही जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति इन अवस्थाओंका भोक्ता है ॥ १८ ॥

यथा दर्पणकालिम्ना मलिनं दृश्यते मुखम् ॥
तद्वदन्तःकरणगैर्दोषैरात्मापि दृश्यते ॥ १९ ॥

जैसे दर्पणके मलिन होनेमें मुखभी मलीन दीखता है, इसी प्रकार अन्तःकरणके दोषोंसे आत्मा विकारी दीखता है ॥ १९ ॥

परस्पराध्यासवशात्स्यादन्तःकरणात्मनोः ॥
एकीभावाभिमानेन परात्मा दुःखभागिव ॥ २० ॥

अन्तःकरण और जीव इन दोनोंके परस्पर अध्यासके

कारण और एकभावका अभिमान करनेसे परमात्मा भी दुःखीसा प्रतीत होता है, वास्तवमें सुख दुःखका धर्म अंतःकरणमें है जीवमें नहीं, परंतु जिस प्रकार चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब जलमें पडनेसे वह जलके चलायमान होनेसे चलायमान विदित होता है इसी प्रकार अन्तःकरणके सुख दुःख होनेसे वही जीवमें आरोपण किये जाते हैं ॥ २० ॥

मरुभूमौ जलत्वेन मध्याह्नार्कमरीचिकाः ॥
दृश्यन्ते मूढचित्तस्य न ह्यार्द्रास्तापकारकाः॥२१॥

जिस प्रकार कि मारवाडदेशमें दुपहरके समय सूर्यकी किरण रेतेमें पडकर जलरूपसे प्रतीत होती है, उसमें केवल अज्ञानसे जाना जाता है, वो जलरूप नहीं, वास्तवमें संतापही करनेवाली है ॥ २१ ॥

तद्वदात्मापि निर्लेपो दृश्यते मूढचेतसाम् ॥
स्वाविद्यात्मात्मदोषेण कर्तृत्वादिकधर्मवान् २२॥

इसी प्रकार आत्मा भी निर्लेप है, परंतु वह मूढ बुद्धिवालोंको अविद्या और अपने दोषके कारण कर्ता भोक्ता प्रतीत होता है ॥ २२ ॥

तत्र चान्नमये पिण्डे हृदि जीवोऽवतिष्ठते ॥
प्राणवायुं व्याप्य देहं तद्वद्धेऽवहितः शृणु ॥
शरीरं तदभिधानेन मांसपिण्डो विराजते ॥ २३ ॥

इस अन्नमय पिंडके स्थूल देहमें हृदयके विषय जीव स्थित

रहता है, और नखके अग्रभागसे लेकर शिखापर्यंत व्याप्त हो रहा है, सो तू सावधान होकर सुन, वही यह जीव मैं 'मनुष्य' मैं 'ब्राह्मण' इत्यादि अभिमान करता हुआ इस मांस-पिण्डमें स्थित है ॥ २३ ॥

नाभेरूर्ध्वमधःकण्ठाद्व्याप्य तिष्ठति यः सदा ॥
तस्य मध्येऽस्ति हृदयं सनालं पद्मकोशवत् ॥२४॥

नाभिसे ऊपर और कंठसे नीचे अवकाशके स्थानको व्याप्त करके सदा स्थित रहता है, इतनेही स्थानके बीचमें हृदय है जिसका स्वरूप डंडीसहित कमलकलीकी समान है ॥ २४ ॥

अधोमुखं च तत्रास्ति सूक्ष्मं सुषिरमुत्तमम् ॥
दहराकाशमित्युक्तं तत्र जीवोऽवतिष्ठति ॥ २५ ॥

उसका मुख नीचेको है उसमें सूक्ष्म और सुन्दर एक छिद्र है, उसीको दहराकाश कहते हैं, उसमें जीव रहता है ॥ २५ ॥

वालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च ॥
भागो जीवः स विज्ञेयः स चानन्त्याय कल्पते२६

केशके अग्रभागका सौ भागकर फिर उसका भी सौवाँ भाग करके जो प्रमाण किया जाय वही सूक्ष्मता जीवकी जाननी, वस्तुतः तो जीवके स्वरूपका प्रमाण नहीं हैं कि ऐसा है, और इतना है ॥ २६ ॥

कदम्बकुसुमोद्बद्धकेसरा इव सर्वतः ॥
प्रसृता हृदयान्नाड्यो याभिर्व्याप्तं शरीरकम् ॥२७॥

जिस प्रकार कदम्बके फूलके मध्यपायी चारों ओर केशर होती है, इसी प्रकारसे हृदय स्थानसे सहस्रों नाडी निर्गत हुई हैं जो शरीर भरमें व्याप्त हैं ॥ २७ ॥

हितं बलं प्रयच्छन्ति तस्मात्तेन हिताः स्मृताः ॥
द्वासप्ततिसहस्रैस्ताः संख्याता योगवित्तमैः ॥२८॥

वे हित और बलको देती हैं इस कारण उनकी हित संज्ञा है, योगियोंने उन नाडियोंकी संख्या बहत्तर सहस्र कही है॥२८॥

हृदयात्तास्तु निष्क्रान्ता यथार्करश्मयस्तथा ॥
एकोत्तरशतं तासु मुख्या विष्वग्विनिर्गताः ॥२९॥

जिस प्रकार सूर्यसे किरण निर्गत होती हैं, इसी प्रकारसे वे नाडी हृदयसे निकली हैं. उनमें एकसौ एक मुख्य नाडियोंने संपूर्ण शरीरको वेष्टित कर दिया है ॥ २९ ॥

प्रतीन्द्रियं दश दश निर्गता विषयोन्मुखाः ॥
नाड्यः कर्मादिहेतूत्थाः स्वप्नादिफलभुक्तये ॥ ३० ॥

और प्रत्येक इन्द्रियोंमें दश दश नाडी हैं उन्हींके द्वारा विषयोंका अनुभव होता है, यह नाडीही सुख दुःख जाग्रत् स्वप्नादिके साक्षात्का कारण है ॥ ३० ॥

वहन्त्यम्भो यथा नद्यो नाड्यः कर्मफलं तथा ॥
अनन्तैकोर्ध्वगा नाडी मूर्द्धपर्यन्तमञ्जसा ॥ ३१ ॥

जिस प्रकार नदी जलको बहाती है इसी प्रकार नाडी सुख दुःखरूप कर्मफलको बहाती है । इन १०१ नाडियोंमेंसे एक नाडी ऊपर अनन्तनाम ब्रह्मरंध्रतक पहुंच गई है ॥ ३१ ॥

सुषुम्नेति समादिष्टा तया गच्छन्विमुच्यते ॥
तत्रावस्थितचैतन्यं जीवात्मानं विदुर्बुधाः ॥ ३२ ॥

जो अनन्त अर्थात् सुषुम्नानामक नाडी है उसमें प्राप्त होकर यह जीव मुक्त हो जाता है, जिस समय यह अंतःकरण कामादि दोषशून्य होता है, उस समय यत्न करनेसे योगीका आत्मा इन नाडियोंमें प्राप्त होता है. परन्तु उस समय सद्गुरुकी कृपा और पुर्वज्ञानकी आवश्यकता है, कारण कि, ज्ञानद्वारा मुक्ति प्राप्त होती है ॥ ३२ ॥

यथा राहुरदृश्योऽपि दृश्यते चन्द्रमण्डले ॥
तद्वत्सर्वगतोऽप्यात्मा लिङ्गदेहे हि दृश्यते ॥ ३३ ॥

जिस प्रकारसे राहु अदृश्य रहकर भी चन्द्रमण्डलमें दीखता है । इसी प्रकार सर्वत्र रहनेवाला आत्मा लिंगदेहमेंही प्रतीत होता है ॥ ३३ ॥

यथा घटे नीयमाने घटाकाशोऽपि नीयते ॥
तद्वत्सर्वगतोऽप्यात्मा लिङ्गदेहे विनिर्गते ॥ ३४ ॥

जिस प्रकार घटके ले जानेसे घटाकाश भी लेकर जाया जाता है, इसी प्रकार सर्वत्र व्यापकभी जीवात्मा लिंगदेहमेंभी प्रतीत होता है ॥ ३४ ॥

निश्चलः परिपूर्णोऽपि गच्छतीत्युपचर्यते ॥
जाग्रत्काले तथाज्ञोऽयमभिव्यक्तविशेषधीः ॥ ३५ ॥

यद्यपि वह सर्वत्र पूर्ण और निश्चल है, परन्तु वह जाग्रत् अवस्थामें घटादि पदार्थोंका चैतन्य प्रतिबिम्बयुक्त होनेसे अन्तःकरण वृत्तिसे व्याप्त होकर चंचलसा दीखता है ॥ ३५ ॥

व्याप्नोति निष्क्रियः सर्वान्भानुर्दश दिशो यथा ॥
नाडीभिर्वृत्तयो यांति लिङ्गदेहसमुद्भवाः ॥ ३६ ॥

जिस प्रकारसे सूर्य दशों दिशाओंको व्याप्त करता है इसी प्रकार निष्क्रिय और सर्व पदार्थोंमें व्याप्त लिंगदेहके संबंधसे उत्पन्न हुई अन्तःकरणकी वृत्ति नाडियोंद्वारा बाहर जाकर विषयोंमें प्राप्त हो उन्हें प्रकाश करती है ॥ ३६ ॥

तत्तत्कर्मानुसारेण जाग्रद्भोगोपलब्धये ॥
इदं लिङ्गशरीराख्यमामोक्षान्न निवर्तते ॥ ३७ ॥

अपने किये उन उन कर्मोंके अनुसार जाग्रतादि अवस्थामें सुख दुःखका साक्षात्कार जीव करता रहता है, सम्पूर्ण वृत्ति लिंगशरीरसे उठती हैं. जबतक मोक्ष न हो तबतक लिंग-शरीरका नाश नहीं होता ॥ ३७ ॥

आत्मज्ञानेन नष्टेऽस्मिन्साविद्ये सशरीरके ॥
आत्मस्वरूपावस्थानं मुक्तिरित्यभिधीयते ॥ ३८ ॥

जिस समय ज्ञानद्वारा जीव और ब्रह्मका भेद मिट जायगा और अविद्यासहित इस लिंगशरीरका नाश हो जायगा उस समय केवल आत्माका अनुभवमात्र ' अहं ब्रह्मास्मि ' इस स्वरूपमें स्थित होनेसे ही मुक्त होता है ॥ ३८ ॥

९

उत्पादिते घटे यद्वद्घटाकाशत्वमृच्छति ॥
घटे नष्टे यथाकाशः स्वरूपेणावतिष्ठते ॥ ३९ ॥

जिस प्रकार घटके उत्पन्न होतेही घटाकाश उसमें प्राप्त होजाता है और उसके नष्ट होनेसे वह अपने स्वरूपमें अवस्थान करता है, इसी प्रकार मायाके नष्ट होनेसे आत्मा अपने स्वरूपमें अवस्थान करता है ॥ ३९ ॥

जाग्रत्कर्मक्षयवशात्स्वप्नभोग उपस्थिते ॥
बोधावस्थां तिरोधाय देहाद्याश्रयलक्षणम् ॥ ४० ॥
कर्मोद्भावितसंस्कारस्तत्र स्वप्नरिरंसया ॥
अवस्थां च प्रयात्यन्यां मायावी चात्ममायया॥४१॥

जब जाग्रत् अवस्थामें भोग देनेवाले कर्मोंका क्षय होकर स्वप्नकालमें भोग देनेवाले कर्म जाग्रत समयके देह गेहादि विषयके साक्षात् करनेवाले ज्ञानको छिपाकर जब जाग्रत् होते हैं तब (यह जीव क्रीडा करो) इस प्रकारसे परमेश्वरकी इच्छासे पूर्व अनुभव किया हुआ स्वप्नसमयके विषयका जाग्रत् होनेपर यह मायावी अविद्योपाधि जीव मायाकी निद्राके योगसे जाग्रत् अवस्थामें भी स्वप्नसे भिन्नस्वरूप अवस्थाकी ओर देखता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

घटादिविषयान्सर्वान्बुद्ध्यादिकरणानि च ॥
भूतानि कर्मवशतो वासनामात्रसंस्थितान् ॥४२॥

घटपटादि विषय, बुद्धि आदि इन्द्रिय और स्वप्नसमयके

भोग देनेवाले पदार्थके समान सब सृष्टि अन्तःकरणने कल्पना करी है जिस प्रकार इकला मनुष्य स्वप्नमें अनेक मनुष्य देखता, भोग भोगता और संसारकी सब रचना भिन्न भिन्न जानता है, यथार्थमें एकही है इसी प्रकार वास्तविक आत्मा है, परन्तु अन्तःकरणकी कल्पनासे यह जगत् अनेक भावसे दीखता है ॥ ४२ ॥

एतान्पश्यन्स्वयंज्योतिः साक्ष्यात्माप्यवतिष्ठते ४३

इन सबको देखनेहारा स्वयंज्योति आत्मा साक्षीरूपसे सबमें वर्तमान है ॥ ४३ ॥

अत्रान्तःकरणादीनां वासनाद्वासनात्मता ॥
वासनामात्रसाक्षित्वं तेन तत्र परात्मनः ॥ ४४ ॥

इस अवस्थामें अन्तःकरणादि सर्व पदार्थोंकी वासना भावनासे की हुई असत्य होनेसे वह वासनारूपही है और परमात्मा उसही स्थानमें वासनामात्रसे साक्षी है ॥ ४४ ॥

वासनाः प्रपंचोऽत्र दृश्यते कर्मचोदितः ॥
जाग्रद्भूमौ यथा तद्वत्कर्तृकर्मक्रियात्मकः ॥ ४५ ॥

जिस प्रकार जाग्रत् अवस्थामें कर्ता कर्म क्रिया इत्यादि संपूर्ण कारणोंसे युक्त व्यवहार चलता है इसी प्रकार पूर्व जन्मके किये कर्मोंकी प्रेरणासे वासनारूप प्रपंच है परन्तु जाग्रत् अवस्थामें प्रपंचका व्यवहार समर्थ होता है और स्वप्न अवस्थामें कल्पित है यही इसमें भेद है ॥ ४५ ॥

निःशेषबुद्धिसाक्ष्यात्मा स्वयमेव प्रकाशते ॥
वासनामात्रसाक्षित्वं साक्षिणः स्वाप उच्यते॥४६॥

सम्पूर्ण बुद्धि वृत्तिका साक्षी आत्मा स्वयं ही प्रकाश करता है, उस साक्षीका जो वासनामात्र साक्षीपना है उसे स्वप्न कहते हैं ॥ ४६ ॥

भूतजन्मनि यद्भूतं कर्म तद्वासनावशात् ॥
नेदीयस्त्वाद्वयस्याद्ये स्वप्नं प्रायःप्रपश्यति ॥४७॥

बाल्य अवस्थामें जाग्रत्में जो कर्म स्तनपान कन्दुकक्रीडा आदि किये हैं, उस समय उसीकी वासना हृदयमें प्रबल रहती है, इस कारण वेही स्वप्न दीखते हैं ॥ ४७ ॥

मध्ये वयसि कार्कश्यात्करणानामिहोर्जितः ॥
वीक्षते प्रायशः स्वप्नं वासनाकर्मणोर्वशात्॥४८॥

और तरुण अवस्थामें इंद्रिय अपने व्यापारमें कुशल हो जाती हैं यह प्राणी अनेक व्यापारमें व्यग्र हो जाता है, अध्ययन, कृषि, व्यापार आदिकी वासना हृदयमें अत्यन्त दृढ हो जाती है, इस कारण तद्रूपही स्वप्न देखता है ॥ ४८ ॥

यियासुः परलोकं तु कर्म विद्यादिसंभृतम् ॥
भाविनो जन्मनो रूपं स्वप्न आत्मा प्रपश्यति४९

और जो वृद्धावस्थामें परलोक जानेके निमित्त दान धर्म विद्यादि दान ऐसे उत्तम कर्म करते हैं उनके हृदयमें यह वासना दृढ हो जाती है तो, प्रायः वह भी इसी प्रकारके स्वप्न

देखा करते हैं, कि हमने दान किया, इस प्रकार लोककी प्राप्ति हुई ॥ ४९ ॥

यद्वत्प्रपतनाच्छ्येनः श्रांतो गगनमण्डले ॥
आकुञ्च्य पक्षौ यतते नीडे निःशयनायने ॥५०॥

जिस प्रकारसे श्येन पक्षी आकाशमें भ्रमण करते २ जब थक जाता है, तब विश्रामका और कोई उपाय नहीं देखकर निज पंखोंको सकोडकर अपने घोसलेमें विश्राम लेता है ॥ ५० ॥

एवं जाग्रत्स्वप्नभूमौ श्रान्त आत्माभिसञ्चरन् ॥
आपीतकरणग्रामः कारणेनैति चैकताम् ॥ ५१ ॥

इसी प्रकार जाग्रत् और स्वप्न अवस्थामें विचरनेसे जब आत्मा श्रांत होता है तब संपूर्ण इन्द्रियोंके शिथिल होनेसे सब साधनोंको लय कर देता है अर्थात् संपूर्ण इन्द्रियोंके व्यापारको समाप्तकर निद्रित हो जाता है ॥ ५१ ॥

नाडीमार्गैरिन्द्रियाणामाकृष्यादाय वासनाम् ॥
सर्वं ग्रसित्वा कार्यं च विज्ञानात्मा प्रलीयते॥५२॥

नाडियोंके मार्गसे इन्द्रियकी वासनाको आकर्षणकर जाग्रत और स्वप्न अवस्थाके सब कार्य समाप्त कर आत्मामें लीन हो जाता है ॥ ५२ ॥

ईश्वराख्येऽव्याकृतेर्थे यथा सुखमयो भवेत् ॥
तत्स्वप्रपञ्चविलयस्तथा भवति चात्मनः ॥ ५३ ॥

जिस समय यह मायासे आच्छादित चैतन्य अव्याकृत स्वरूपमें लय होता है, उस समय सम्पूर्ण प्रपंच लय हो जाता है, परन्तु यह लय आत्यंतिक नहीं है, इसमें केवल कार्यरूपका नाश होता है कारणरूप वासना बनी रहती है॥९३॥

योषितः काम्यमानायाः संभोगान्ते यथा सुखम्॥
स आनंदमयो बाह्यो नान्तरः केवलं यथा ॥ ९४ ॥

जिस पुरुषकी किसी स्त्रीको अत्यंत इच्छा हो, और वह उसे प्राप्त हो जाय उसके सम्भोगसे जो सुख हो जाता है उसकी सीमा है, परन्तु उससे कहीं अधिक सुख निद्रा अवस्थामें जीवको आनन्दमय कोशमें प्राप्त होनेसे होता हैं। जब जीवको बाह्य विषयका ज्ञान नहीं होता वह अन्तर अर्थात् मोक्षकी अवस्थाकी समान जिसमें विषयवासना अत्यन्त निवृत्त होती है, निवृत्त वासनावाला भी नहीं होता ॥ ९४ ॥

प्राज्ञात्मतां समासाद्य विज्ञानात्मा तथैव सः ॥
विज्ञानात्मा कारणात्मा तथा तिष्ठंस्तथापि सः९५

निद्रावस्थामें जीवात्मा जब ईश्वरको प्राप्त होता है तब जाग्रत् आदि अवस्थामें जैसा ईश्वरसे भिन्न रहता है तैसा वहाँ भी भिन्न रहता है, तब भी भेद नहीं जाता ऐसा होनेसेही वह उस समय दुःख रहित होता है क्योंकि कारणात्मामें उसका साम्य माना जाता है, एकत्व पाता है इस कारण औपचारिक है ॥ ९५ ॥

अविद्यासूक्ष्मवृत्त्यानुभवत्येव सुखं यथा ॥

अज्ञानमपि साक्ष्यादिवृत्तिभिश्चानुभूयते ॥
तथाहं सुखमस्वाप्सं नैव किंचिदवेदिषम् ॥ ९६ ॥

तो भी उस अवस्थामें अविद्याकी सूक्ष्मतर वृत्ति आनेसे जैसे सुख अनुभव करता है उस सुखको जैसे, "सुखमहमस्वाप्सम्" अर्थात् मैं सुखसे सोया "न किंचिदवेदिषम्" और दूसरा कुछभी न जानना केवल अज्ञानकाही अनुभव किया॥९६॥

इत्येवं प्रत्यभिज्ञापि पश्चात्तस्योपपद्यते ॥ ९७ ॥

परन्तु यह अज्ञानभी साक्षी आदिकी वृत्तिने अनुभव किया जाता है, किस सुखसे सोया यदि साक्षी न हो तो सुखसे सोनेकी स्मृति किसी प्रकार नहीं हो सकती क्योंकि गाढ निद्रामें सोते समय तो उसे सुखका अनुभव होता नहीं, उसके पश्चात जाग्रत होकर साक्षी द्वारा जानता है ॥ ९७ ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्याख्यमेवेहामुत्र लोकयोः ॥
पश्चात्कर्मवशादेव विस्फुलिङ्गा यथानलात्॥९८॥

जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति ये तीन अवस्था जैसी इस लोककी हैं तैसी देवलोककी हैं, सुषुप्तिके अन्तमें जब जाग्रत् अवस्था आती है तो अपने कारणरूप जीवके प्रारब्धके कर्मसे फिर इन्द्रियें इस प्रकार जाग उठती हैं जिस प्रकार अग्निसे विस्फुलिंग (चिनगारियां) उठने लगती हैं इसी प्रकार सूक्ष्मरूपमें लीन हुई इंद्रियें उठती हैं ॥९८ ॥

जायन्ते कारणादेव मनोबुद्ध्यादिकानि तु ॥

पयःपूर्णो घटो यद्वन्निमग्नः सलिलाशये ॥
तैरेवोद्धृत आयाति विज्ञानात्मा तथैत्य जात् ५९॥

जिस प्रकार जलभरा हुआ घडा जलमें डुबा दो और यादि उसे फिर निकालो तो वह उस जलसे भराही बाहर आता है इसी प्रकारसे यह जीवात्मा इन्द्रिय आदि सहित कारणमें लयको प्राप्त हो उन इन्द्रियों सहित ही जाग्रत् अवस्थाको प्राप्त होता है ॥ ५९ ॥

विज्ञानकारणात्मानस्तथा तिष्ठंस्तथापि सः ॥
दृश्यते सत्सु तेष्वेव नष्टेष्वायात्यदृश्यताम् ॥६०॥

विज्ञानात्मा (जीव) कारणात्मा (ईश्वर) यह दोनों वास्तवमें एकही रूप हैं परन्तु अविद्याके प्रपंचसे उनमें भेद प्रतीत होता है, जब यह अविद्या नष्ट हो जाय तो ऐसा नहीं होता उस समय दोनों एकरूप हो जाते हैं ॥ ६० ॥

एकाकारोऽर्यमा तत्तत्कार्येष्विव परः पुमान् ॥
कूटस्थो दृश्यते तद्वद्गच्छत्यागच्छतीव सः ॥६१॥

जिस प्रकारसे एकही सूर्य जलादि पदार्थोंमें प्रतिबिंबित होनेसे अनेकरूप दीखता हैं, और जलके चलायमान होनेसे सूर्यादिमेंही चञ्चलता प्रतीत होती है, इसी प्रकार कूटस्थ एक (जीवात्मा) ईश्वर एकही है, और अनेक देहोंमें प्रतिबिम्बित जीवरूपसे प्रविष्ट होकर अनेक रूप और गमनागमनादिरूपसे दीखता हैं ॥ ६१ ॥

मोहमात्रान्तरायत्वात्सर्वं तस्योपपद्यते ॥
देहाद्यतीत आत्मापि स्वयंज्योतिःस्वभावतः ६२॥
एवं जीवस्वरूपं ते प्रोक्तं दशरथात्मज ॥ ६३ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे जीवस्वरूपकथनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

आत्मा देहादि उपाधिसे रहित स्वप्रकाश है, परन्तु स्वरूपकी स्मृति लोप करनेवाली मायाने विस्मृतिको प्राप्त कर दिया है, इससे सब प्रपंच इसमें अज्ञानसे विदित होता है, कारण कि, यह माया तो (अघटितघटनापटीयसी) न होनेवाली बातकोभी करके दिखा देती है। मायाके योगसे आत्मामें कितने ही विरुद्ध कर्म दीखें परन्तु मायाके दूर होते ही जीव ईश्वर और निर्विकार हो जाता है, हे दशरथकुमार ! यह तुमसे जीवका स्वरूप वर्णन किया ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे० ब्रह्मविद्यायां० जीवस्वरूपवर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

श्रीभगवानुवाच ।

देहान्तरगतिं स्वस्य परलोकगतिं तथा ॥
वक्ष्यामि नृपशार्दूल मत्तः शृणु समाहितः ॥ १ ॥

जीवकी देहान्तरगति और परलोकगति लिंग देहके कारण

होती है यह बात संक्षेपसे कहकर अब विस्तारसे वर्णन करते हुए श्रीभगवान् बोले हे नृपश्रेष्ठ ! उस जीवकी देहान्तरगति और परलोकगति मैं तुमसे वर्णन करता हूँ सावधान होकर सुनो ॥ १ ॥

भुक्तं पीतं यदस्त्यत्र तद्रसाद्दामबन्धनम् ॥
स्थूलदेहस्य लिङ्गस्य तेन जीवनधारणम् ॥ २ ॥

इस स्थूलदेहसे जो कुछ भोजन किया जाता और पिया जाता है, उसीसे कारण लिंग और स्थूल देहमें सम्बन्ध उत्पन्न होता है, उसीसे जीवन धारण होता है ॥ २ ॥

व्याधिना जरया वापि पीड्यते जाठरोऽनलः ॥
श्लेष्मणा तेन भुक्तान्नं पीतं वा न पचत्यलम् ॥३॥

जिस समय व्याधि वा जरा अवस्थासे कफ प्रबल होता है तब जाठरानलके मंद होनेसे भोजन किया हुआ अन्न अच्छी तरह नहीं पचता है ॥ ३ ॥

भुक्तपीतरसाभावादाशु शुष्यन्ति धातवः ॥
भुक्तपीतरसेनैव देहं लिम्पंति नित्यशः ॥ ४ ॥

तब भोजन किये हुए रसके न प्राप्त होनेसे शीघ्रही धातु सूख जाते हैं, और भोजन किये तथा पान किये रससे ही शरीरमें जाठराग्निके दीप्त रहते जो अन्न भक्षण किया जाता है, वह रसरूप होकर शरीरको पुष्ट करता है ॥ ४ ॥

समीकरोति यस्मात्तत्समानो वायुरुच्यते ॥
इदानीं तद्रसाभावादामबन्धनहानितः ॥ ५ ॥

उस समय प्राणवायु वह सम्पूर्ण रस लेकर सब धातुओंमें पहुँचाता है इसी कारणसे यह समान वायु कहाता है और वृद्धावस्थामें वह रस उत्पन्न नहीं होता इस कारण शरीरके बन्धन जो दृढतासे परस्पर संघट्ट हैं शिथिल होजाते हैं ॥ ५ ॥

परिपक्वरसत्वेन यथाम्रं वृन्ततः फलम् ॥
स्वयमेव पतत्याशु तथा लिङ्गं तनोर्व्रजेत् ॥ ६ ॥

जिस प्रकार कि, आम्र फल पककर अपने भारसे आपही शीघ्र पतित हो जाता है, इसी प्रकार शरीरके शिथिल होनेसें लिंगशरीरका स्थूलसे वियोग हो जाता है ॥ ६ ॥

ततःस्थानादपाकृष्य हृषीकाणां च वासनाः ॥
आध्यात्मिकाधिभूतानि हृत्पद्मे चैकतां गताः ॥ ७ ॥

सम्पूर्ण इन्द्रियोंकी वासना, आध्यात्मिक–जीवसम्बन्धी बुद्धि और ज्ञानेन्द्रियादि, आधिभौतिक–प्राप्त होनेवाले देहके कारणभूत सूक्ष्म रूपवाले कर्म, यह तीनों आकर्षित होकर हृदयकमलमें एकताको प्राप्त होते हैं ॥ ७ ॥

तदोर्ध्वगः प्राणवायुः संयुक्तो नववायुभिः ॥
ऊर्ध्वोच्छ्वासी भवत्येष तथा तेनैकतां गतः ॥ ८ ॥

तब मुख्य प्राणवायु शेष नौ वायुओंसे संयुक्त होकर

ऊर्ध्वश्वासरूपी होजाता है, और फिर वे सब एक होकर जीवात्मासे संयुक्त होते हैं ॥ ८ ॥

चक्षुषो वाथ मूर्ध्नो वा नाडीमार्गं समाश्रितः।
विद्याकर्मसमायुक्तो वासनाभिश्च संयुतः ॥ ९ ॥

विद्या, कर्म और वासनासे युक्त हो यह जीव अपने कर्मसे नाडीमार्गका आश्रय करके नेत्रमार्ग अथवा ब्रह्मरंध्रके द्वारा बहिर्गत होता है ॥ ९ ॥

प्रज्ञात्मानं समाश्रित्य विज्ञानात्मोपसर्पति ॥
यथा कुम्भो नीयमानो देशाद्देशान्तरं प्रति ॥ १० ॥
स्वपूर्ण एव सर्वत्र स आकाशोऽपि तत्र तु ॥
घटाकाशाख्यतां याति तद्वल्लिङ्गं परात्मनः ॥ ११ ॥

जिस प्रकारसे घडेको इस देशसे दूसरे स्थानमें ले जाते हैं परन्तु वह आकाशसे पूर्ण हो जाता है, जहां जहां घट जायगा उसी उसी स्थानमें घटाकाश भी जायगा इसी प्रकारसे जहां जहां लिंगशरीर गमन करता है; उसी उसी स्थानमें जीव जाता है ॥ १० ॥ ११ ॥

पुनर्देहान्तरं याति यथाकर्मानुसारतः ॥
आमोक्षात्संचरत्येवं मत्स्यःकूलद्वयं यथा ॥ १२ ॥

और कर्मानुसार दूसरे देहको प्राप्त होता है, जिस प्रकार नदीका मच्छ कभी इस किनारे और कभी दूसरे किनारे

जाता है, इसी प्रकारसे यह मोक्ष न होनेतक अनेक योनि-योंमें भ्रमण करता रहता है ॥ १२ ॥

पापभोगाय चेद्गच्छेद्यमदूतैरधिष्ठितः ॥
यातनादेहमाश्रित्य नरकानेव केवलम् ॥ १३ ॥

जो पापी हैं उनको यमदूत ले जाते हैं यह यातनादेह जो नरक दुःख भोगनेके लिये दी जाती है उसको आश्रय करके केवल नरकोंहीको भोगता है ॥ १३ ॥

इष्टापूर्तादिकर्माणि योऽनुतिष्ठति सर्वदा ॥
पितृलोकं व्रजत्येष धूममाश्रित्य बर्हिषः ॥ १४ ॥

और जिन्होंने सदा इष्ट (यज्ञादि) पूर्त (वापीकूपतडागादि निर्माण करना) कर्म किये हैं, वह पितृलोकको गमन करते हैं, यमदूत उन्हें पितृलोकको प्राप्त करते हैं ॥ १४ ॥

धूमाद्रात्रिस्ततः कृष्णपक्षस्तस्माच्च दक्षिणम् ॥
अयनं च ततो लोकं पितॄणां च ततः परम् ॥
चन्द्रलोके दिव्यदेहं प्राप्य भुंक्ते परां श्रियम् ॥ १५ ॥

उस मार्गका क्रम यह है कि, धूम फिर रात्रिअभिमानी देवताके निकट फिर कृष्णपक्षाभिमानी देवताके निकट फिर दक्षिणायनअभिमानी देवताके निकट फिर वहांसे पितृलोकमें जाता है, पितृलोकसे आगे चन्द्रलोकको प्राप्त हो दिव्य देह पाकर महालक्ष्मीका भोग करता है ॥ १५ ॥

तत्र चन्द्रमसा सोऽसौ यावत्कर्मफलं वसेत् ॥
तथैव कर्मशेषेण यथेतत्पुनराव्रजेत् ॥ १६ ॥

वहां यह चन्द्रमाकेही समान होकर कर्मके फलकी अवधि-तक चन्द्रलोकमें वास करता है जब पुण्य फल समाप्त हो जाता है तो जिस क्रमसे इस लोकमें गमन हुआ था उसी क्रमसे इस लोकमें फिर आता है ॥ १६ ॥

वपुर्विहाय जीवत्वमासाद्याकाशमेति सः ॥
आकाशाद्वायुमागत्य वायोरंभो व्रजत्यथ ॥ १७ ॥

चन्द्रलोकसे चलते समय उस शरीरको छोड यह आकाशरूप होकर आकाशसे वायुमें और वायुसे जलमें आता है ॥ १७ ॥

अद्भ्यो मेघं समासाद्य ततो वृष्टिर्भवेदसौ ॥
ततो धान्यानि भक्ष्याणि जायते कर्मचोदितः १८ ॥

जलसे मेघोंमें प्राप्त होकर फिर यह वर्षाद्वारा पृथ्वीपर पतित होता है, फिर अनेक कर्मके वश होकर भक्षण योग्य अन्नमें प्राप्त होता है ॥ १८ ॥

योनिमन्ये प्रपद्यन्ते शरीरत्वाय देहिनः ॥
स्थाणुमन्येऽनुसंयन्ति यथाकर्म यथाश्रुतम् ॥ १९ ॥

और कितने एक शरीरप्राप्तिके निमित्त मनुष्यादि योनिमें प्राप्त होते हैं और कितने एक कर्म और ज्ञानके तारतम्यसे स्थावरत्वको प्राप्त होजाते हैं ॥ १९ ॥

ततोऽन्नत्वं समासाद्य पितृभ्यां भुज्यते परम् ॥
ततः शुक्रं रजश्चैव भूत्वा गर्भोऽभिधार्यते ॥२०॥

जो जीव अन्नमें प्राप्त हुए हैं, उस अन्नको स्त्री पुरुष भक्षण करते हैं उससे स्त्री और पुरुषोंका रज और शुक्र होकर उन दोनोंके संयोगसे वह गर्भ रूप धारण करते हैं ॥ २० ॥

ततः कर्मानुसारेण भवेत्स्त्रीपुन्नपुंसकम् ॥
एवं जीवगतिःप्रोक्ता मुक्तिं तस्य वदामि ते॥२१॥

यही जीव कर्मके अनुसार स्त्री, पुरुष और नपुंसक होता है, इस प्रकारसे इस जीवकी इस लोकमें गति और परलोकगति होती है अब इसकी मुक्तिका वर्णन करता हूँ ॥ २१ ॥

परन्तु शान्त्यादियुक्तःसन् सदा विद्यारतो भवेत् ॥
स याति देवयानेन ब्रह्मलोकावधिं नरः ॥ २२ ॥

जो शमदमादिसाधनसम्पन्न सदा अपने वर्णाश्रमके कर्म करते और फलकी आकांक्षा न करके ईश्वरार्पण करदेते हैं वह मनुष्य देवयानमार्गसे ब्रह्मलोकपर्यन्त गमन करता है ॥ २२ ॥

अर्चिर्भूत्वा दिनं प्राप्य शुक्लपक्षमनो व्रजेत् ॥
उत्तरायणमासाद्य संवत्सरमथो व्रजेत् ॥ २३ ॥

वह प्रथम ज्योतिमें प्राप्त हो पीछे दिन और फिर शुक्लपक्षाभिमानी देवताके निकट जाता है, फिर उत्तरायणको प्राप्त होकर संवत्सरके निकट गमन करता है ॥ २३ ॥

आदित्यचन्द्रलोकौ तु विद्युल्लोकमतः परम् ॥
अथ दिव्यःपुमान्कश्चिद्ब्रह्मलोकादिहेति न ॥२४॥

फिर सूर्यलोकको प्राप्त होता है, चन्द्रलोकसे भी ऊपर विद्युत् लोकको प्राप्त होता है फिर उससे आगे कोई एक पुरुष दिव्य देहको प्राप्त हो ब्रह्मलोकको जाता है और वहांसे यहां नहीं आता है ॥ २४ ॥

दिव्ये वपुषि संधाय जीवमेवं नयत्यसौ ॥
ब्रह्मलोके दिव्यदेहे भुक्त्वा भोगान्यथेप्सितान् ॥
तत्रोषित्वा चिरं कालं ब्रह्मणा सह मुच्यते॥२५॥
शुद्धब्रह्मरतो यस्तु न स यात्येव कुत्रचित् ॥२६॥

ब्रह्मलोकमें प्राप्त होकर दिव्य देहके आश्रित हो यह जीव रहता है उस दिव्य देहसे ब्रह्मलोकमें अनेक प्रकारके मन इच्छित भोगोंको भोगता हुआ बहुत कालतक उस स्थानमें वासकर ब्रह्माके साथ मुक्त होजाता है उसकी फिर आवृत्ति नहीं होती ॥ २५ ॥ २६ ॥

तस्य प्राणा विलीयन्ते जले सैन्धवखिल्यवत् ॥
स्वप्नदृष्टा यथा सृष्टिः प्रबुद्धस्य विलीयते ॥२७॥
ब्रह्मज्ञानवतस्तद्वद्विलीयन्ते तदैव ते ॥
विद्याकर्मविहीनो यस्तृतीयं स्थानमेति सः॥२८॥

जिस प्रकारसे स्वप्नमें देखी हुई सृष्टि जाग्रत् होते ही लय हो जाती है इसी प्रकारसे ब्रह्मज्ञान प्राप्त होनेसे यह सब सृष्टि

नष्ट हो जाती है, और जिन्होने केवल पापही किये हैं और उपासना तथा पुण्यकर्मसे रहित, उनकी तीसरी गति अर्थात् नरक होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

भुक्त्वाऽत्र नरकान्घोरान्महारौरवरौरवान् ॥
पश्चात्प्राक्तनशेषेण क्षुद्रजन्तुर्भवेन्नरः ॥ २९ ॥

वे अनेक प्रकारके रौरव, महा रौरव, घोर नरकोंको भोगकर पीछे शेष कर्मोंके अनुसार क्षुद्र जन्तुओंके शरीरको प्राप्त होते हैं ॥ २९ ॥

यूकामशकदंशादिजन्मासौ लभते भुवि ॥
एवं जीवगतिः प्रोक्ता किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ ३० ॥

पृथ्वीमें लीख, मच्छर, डांश आदिका जन्म लेता है, इस प्रकार के जीवकी गति तुमसे वर्णन की अब और क्या सुननेकी इच्छा है ॥ ३० ॥

श्रीराम उवाच।

भगवन्यत्त्वया प्रोक्तं फलं तज्ज्ञानकर्मणोः ॥
ब्रह्मलोकं चन्द्रलोकं भुक्ते भोगानिति प्रभो ॥ ३१ ॥

रामचन्द्र बोले—हे भगवन् ! आपने उपासना और कर्मकाण्डसे अनेक प्रकारसे चन्द्रलोक और ब्रह्मलोककी प्राप्ति वर्णन की सो यथार्थ है ॥ ३१ ॥

गन्धर्वादिषु लोकेषु कथं भोगः समीरितः ॥
देवत्वं प्राप्नुयात्कश्चित्कश्चिदिन्द्रत्वमेव च ॥ ३२ ॥

गन्धर्वादि लोक और इन्द्रादि लोकमें किस प्रकारसे मोन प्राप्त होते हैं कोई देवता कोई इन्द्र और कोई गन्धर्व होता है ॥ ३२ ॥

एतत्कर्मफलं वास्तु विद्याफलमथापि वा ॥
तद्ब्रूहि गिरिजाकान्त तत्र मे संशयो महान् ॥ ३३ ॥

हे शंकर! यह कर्मका फल है वा उपासनाका फल है सो कृपा करके वर्णन कीजिये, इसमें मुझे बडा सन्देह है ॥ ३३ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

तद्विद्याकर्मणोरेवानुसारेण फलं भवेत् ॥
युवा च सुन्दरः शूरो नीरोगी बलवान्भवेत् ॥ ३४ ॥

शिवजी बोले-उपासना और शुभकर्म इन दोनोंके ही योगसे फल प्राप्त होता है, वह हम वर्णन करते हैं, जो मनुष्य युवा सुन्दर शूर नीरोग और बलवान् हो ॥ ३४ ॥

सप्तद्वीपां वसुमतीं भुंक्ते निष्कण्टकं यदि ॥
स प्रोक्तो मानुषानन्दस्तस्माच्छतगुणो मतः ॥ ३५ ॥

वह यदि सप्तद्वीपयुक्त पृथ्वीको निष्कण्टक भोग करता हो उसका नाम मानुषानन्द है यह आनन्द साधारण मनुष्यको देह प्राप्त होनेवाले आनन्दसे सौ गुणा अधिक है ॥ ३५ ॥

मनुष्यस्तपसा युक्तो गन्धर्वो जायतेऽस्य तु ॥
तस्माच्छतगुणो देवगंधर्वस्य न संशयः ॥ ३६ ॥

जो मनुष्य तप आदिमें संयुक्त हो वह गन्धर्व होता है

मनुष्योंके आनन्दसे सौगुणा आनन्द गन्धर्वोंको प्राप्त होता है ॥ ३६ ॥

एवं शतगुणानन्द उत्तरोत्तरतो भवेत् ॥
पितॄणां चिरलोकानामज्ञातसुखसंपदाम् ॥ ३७ ॥

इसी प्रकारसे ऊपर ऊपर पितृलोक देवादिलोकमें उत्तरोत्तर सौगुणा आनन्द बढता जाता है ॥ ३७ ॥

देवतानामथेन्द्रस्य गुरोस्तद्वत्प्रजापतेः ॥
एवं ब्रह्मण आनन्दः पुरः स्यादुत्तरोत्तरः ॥ ३८ ॥

तिनमें भी देवता देवतासे इंद्र इंद्रसे बृहस्पति बृहस्पतिसे ब्रह्मदेव ब्रह्मदेवसे ब्रह्मानन्द उत्तरोत्तर सौ २ गुणा अधिक है ॥ ३८ ॥

ज्ञानाधिक्यात्सुखाधिक्यं नान्यदस्ति सुरालये ॥
श्रोत्रियोऽवृजिनोऽकामहतो यश्च द्विजो भवेत् ३९

ज्ञानके आनंदसे अधिक आनंद तो देवलोकमें भी नहीं है कारण कि, ज्ञानीको किसी वस्तु अपेक्षा नहीं है कहींसे भय नहीं है, जो ब्राह्मण क्षत्रियादि वेदवेदांगके पारगामी निष्पाप और निष्काम हैं और भगवत्की उपासना करनेवाले हैं ॥ ३९ ॥

तस्याप्येवं समाख्याता आनन्दाश्चोत्तरोत्तरम् ॥
आत्मज्ञानात्परं नास्ति तस्माद्दशरथात्मज ॥ ४० ॥

वह अनुक्रमसे उत्तर उत्तर आनंदको प्राप्त होते हैं परन्तु हे दशरथकुमार ! यह जो कुछ आनंद है सो आत्मज्ञानकी बरा-

पर नहीं है, इससे आत्मज्ञानका अनुष्ठान करना उचित है४०

ब्राह्मणः कर्मभिर्नैव वर्धते नैव हीयते ॥
न लिप्यते पापकेन कर्मणा ज्ञानवान्यदि ॥ ४१ ॥

जो ब्राह्मण ब्रह्मवेत्ता है उसे कर्म उपासनासे कुछ प्रयोजन नहीं है न उसकी कर्मसे कुछ वृद्धि और न करनेसे कुछ हानि भी नहीं, जो शास्त्रने विहित कर्मोंका विधान और निषिद्ध कर्मोंका निषेध किया है, वह केवल जबतक ज्ञान नहीं तभी तक है, ज्ञान होनेपर कुछ नहीं, और यदि ज्ञानी लोकस्थापनके निमित्त कर्म करें तो भी कुछ हानि नहीं ॥ ४१ ॥

तस्मात्सर्वाधिको विप्रो ज्ञानवानेव जायते ॥
ज्ञात्वा यः कुरुते कर्म तस्याक्षय्यफलं भवेत् ४२॥

इस कारणसे ज्ञानवान् ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है, जो कोई पुण्यवान् ज्ञानी जानकर कर्म करता है उसके पुण्यका फल अक्षय होता है ॥ ४२ ॥

यत्फलं लभते मर्त्यः कोटिब्राह्मणभोजनैः ॥
तत्फलं समवाप्नोति ज्ञानिनं यस्तु भोजयेत् ४३॥

जिस फलको मनुष्य कोड ब्राह्मणके भोजन करानेसे प्राप्त होता है वह फल एक ज्ञानीके भोजन करानेसे प्राप्त हो जाता है४३

ज्ञानिभ्यो दीयते यच्च तत्कृ त्रिगुणितं भवेत् ॥
ज्ञानवन्तं द्विजं यस्तु द्विषते च नराधमः ॥
स शुष्यमाणो म्रियते यस्मादीश्वर एव सः॥४४॥

जो वस्तु ज्ञानीजनोंको दिया जाता है वह करोडगुण मिलती है और जो मनुष्योंमें अधम ज्ञानीकी निन्दा करता है वह क्षयरोगको प्राप्त होकर मृतक हो जाता है कारण कि ज्ञानी साक्षात् ईश्वर है ॥ ४४ ॥

उपासको न यात्येव यस्मात्पुनरधोगतिम् ॥
उपासनरतो भूत्वा तस्मादास्व सुखी नृप ॥४५॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्म-
विद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे जीवगत्या-
दिनिरूपणं नामैकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

हे रामचन्द्र ! जो निर्गुणको कठिन समझते हैं वह पहले सगुण उपासना करें, किसी भी सगुण उपासना करनेवालेकी अधोगति नहीं होती, इस कारण सगुणरूपकी ही उपासना करके सुखी हो ॥ ४५ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीता सू० शिवराघवसंवादे
भा० टी० एकादशोऽध्यायः ॥ ११ ॥

श्रीराम उवाच ।

भगवन्देवदेवेश नमस्तेऽस्तु महेश्वर ॥
उपासनाविधिं ब्रूहि देशं कालं च तस्य तु ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्र बोले—हे देवदेव ! महेश्वर ! आपको नमस्कार है आप उपासनाकी विधि और उसका देशकाल वर्णन कीजिये कि किस समय किस प्रकार उपासना की जाय ॥ १ ॥

अङ्गानि नियमांश्चैव मयि तेऽनुग्रहो यदि ॥

ईश्वर उवाच ।

शृणु राम प्रवक्ष्यामि देशं कालमुपासनं ॥ २ ॥
सर्वाकारोऽहमेवैकः सच्चिदानंदविग्रहः ॥
मदंशेन परिच्छिन्ना देहाः सर्वदिवौकसाम् ॥ ३ ॥

हे भगवान् ! हमारे ऊपर आपकी कृपा होय तो उपासनाका अंग और नियम कहो. फिर शिवजी बोले—हे राम ! मैं तुमसे उपासनाकी विधि और उसका देश काल कहता हूँ तुम मन लगाकर सुनो । जितने देवता हैं ये सब मेरे ही रूप हैं वास्तवमें मुझसे भिन्न नहीं ॥ २ ॥ ३ ॥

ये त्वन्यदेवताभक्ता यजंते श्रद्धयान्विताः ॥
तेऽपि मामेव राजेन्द्र यजन्त्यविधिपूर्वकम् ॥ ४ ॥

जो दूसरे देवताओंके भक्त हैं, और श्रद्धापूर्वक उनका पूजन करते हैं, राजन् ! वे पुरुष मेरा ही भेदबुद्धिसे यजन करनेवाले हैं ॥ ४ ॥

यस्मात्सर्वमिदं विश्वं मत्तो न व्यतिरिच्यते ॥
सर्वक्रियाणां भोक्ताहं सर्वस्याहं फलप्रदः ॥ ५ ॥

जिस कारण कि, इस सम्पूर्ण संसारमें मेरे सिवाय और कुछ नहीं है इसीसे मैं सब क्रियाका भोक्ता और सबका फल देनेवाला हूँ ॥ ५ ॥

येनाकारेण ये मर्त्या मामेवैकमुपासते ॥
तेनाकारेण तेभ्योऽहं प्रसन्नो वाञ्छितं ददे ॥ ६ ॥

जो पुरुष विष्णु, शिव, गणेशादि जिस भावसे मेरी उपासन करते हैं, उसी भावनाके अनुसार उसी देवताके रूपसे मैं उन्हें वांछित फल देता हूँ ॥ ६ ॥

विधिनाऽविधिना वापि भक्त्या ये मामुपासते ॥
तेभ्यः फलं प्रयच्छामि प्रसन्नोऽहं न संशयः ॥७॥

विधिसे अविधिसे किसी प्रकारसे हो जो मेरी उपासना करते हैं उनको मैं प्रसन्न होकर फल देता हूँ, इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ७ ॥

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् ॥
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥८॥

यद्यपि वह दुराचारी है परंतु वह अनन्य होकर मेरा भजन करता है उस पुरुषको साधु ही मानना चाहिये और पुण्यवान् है यह भक्तिकी महिमा दिखाई है, परन्तु यह निश्चय जानना चाहिये कि अनन्यभक्तिवाला किसी प्रकार दुराचारी नहीं हो सकता, कारण कि अनन्यभक्तिका और स्थानमें मन नहीं जाता ॥ ८ ॥

स्वजीवत्वेन यो वेत्ति मामेवैकमनन्यधीः ॥
तं न स्पृशंति पापानि ब्रह्महत्यादिकान्यपि ॥९॥

जो एकनिष्ठबुद्धि होकर जीवात्मा परमात्माको एकही रूप

जानता है, अर्थात् जीवरूप भी मेरेको ही जानता है और अनन्य बुद्धिसे मेरा भजन करता है उसको पाप स्पर्श नहीं करता, बहुत क्या उसे ब्रह्महत्या भी स्पर्श नहीं करती ॥ ९ ॥

उपासाविधयस्तत्र चत्वारः परिकीर्तिताः ॥
संपदारोपसंवर्गाध्यासा इति मनीषिभिः ॥ १० ॥

उपासनाकी विधि चार प्रकारकी है, संपत्, आरोप, संवर्ग और अध्यास ॥ १० ॥

अल्पस्य चाधिकत्वेन गुणयोगाद्विचिन्तनम् ॥
अनन्तं वै मन इति संपद्विधिरुदीरितः ॥ ११ ॥

अल्प वस्तुकाभी गुणयोगसे मनकी वृत्तिसे अनन्त गुणोंकी भावनासे चिन्तन करना जैसे कि, मूर्तिमें अनंत गुणविशिष्ट शिव तथा विष्णुका ध्यान करना इसका नाम संपत् है ॥ ११ ॥

विधावारोप्य योपासा सारोपः परिकीर्तितः ॥
यद्वदोङ्कारमुद्गीथमुपासीतेत्युदाहृतः ॥ १२ ॥

एक देश वा अंगमें संपूर्ण उपास्य वस्तुका आरोप करके जो उपासना करनी है उसे आरोप कहते हैं, जैसे ओंकारकी उद्गीथ सामरूपसे उपासना की जाती है ॥ १२ ॥

आरोपो बुद्धिपूर्वेण य उपासाविधिश्च सः ॥
योषित्यग्निमतिर्यत्तदध्यासः स उदाहृतः ॥ १३ ॥

आरोप और अध्यास इनका स्वरूप बहुधा एकसा है, भेद इतनाही है कि बुद्धिपूर्वक किसी एक वस्तुमें विवक्षित धर्मका

आरोप करके उसकी उपासना करना जैसे स्त्रीपर अग्निका आ-रोप (अर्थात्) स्त्रीको अग्निरूप मानना यह अध्यास है ॥ १३ ॥

क्रियायोगेन चोपास्तिर्विधिः संवर्ग उच्यते ॥
संहृत्य वायुः प्रलये भूतान्येकोऽवसीदति ॥ १४ ॥

कर्मयोगसे उपासना करनेका नाम संवर्ग है अर्थात् सम्पूर्ण भूतोंको उपासनाके योगसे वशमें करना, जैसे प्रलयकालमें संवर्त नामक वायु अपनी शक्तिसे सब भूतोंको वश करती है ॥ १४ ॥

उपसंगम्य बुद्ध्या यदासनं देवतात्मना ॥
तदुपासनमन्तः स्यात्तद्बहिः संपदादयः ॥ १५ ॥

गुरुसे प्राप्त हुए ज्ञानसे देवतामें और अपनेमें भेद न मानना और अन्तःकरणसे देवताके समीप प्राप्त होना और अन्तःकरणसेही सब पूजन कल्पित करना, इसका नाम अंत-रंग उपासना है और इसके उपरांत दूसरी विधिसे बहिरंग उपा-सना कहाती है ॥ १५ ॥

ज्ञानान्तरानन्तरितसजातिज्ञानसंहतेः ॥
सम्पन्नदेवतात्मत्वमुपासनमुदीरितम् ॥ १६ ॥

तब इस प्रकार किसीकी उपासना करनी और कहांतक करनी किसी भी देवताकी उपासना करते हुए, ध्यानसे उस देवताके स्वरूपका जो ज्ञान होता है उस ज्ञानको विजातीय ज्ञानसे शिवका ध्यान करते हुए कामिनीके ध्यानसे मध्यमें

विच्छिन्न न होकर व्यवधानरहित ज्ञानपरम्परासे—निदिध्यासना करके ध्यानयोग्य देवताओंमें अपनी बुद्धि लगाकर एक रूपका साक्षात् होनेतक उपासना करता है ॥ १६ ॥

संपदादिषु बाह्येषु दृढबुद्धिरुपासनम् ॥
कर्मकाले तदंगेषु दृष्टिमात्रमुपासनम् ॥
उपासनमिति प्रोक्तं तदंगानि ब्रुवे शृणु ॥ १७ ॥

संपदादि जो चार उपासना वर्णन की हैं, यह दृढ बुद्धिकी उपासना तथा उपासनाकी परम अवधि है और सगुण उपासना इस प्रकार है कि, मूर्तिकी उपासना करनेके समय उसके प्रत्येक अंगोंमें अक्षय दृष्टि लगाकर उपासना करनी, इस उपासनाके अंगोंको श्रवण करो ॥ १७ ॥

तीर्थक्षेत्रादिगमनं श्रद्धां तत्र परित्यजेत् ॥
स्वचित्तैकाग्रता यत्र तत्रासीत सुखं द्विजः ॥ १८ ॥

उपासनाओंके योग्य देशोंका कथन करते हैं कि, तीर्थ और क्षेत्रादिकोंमेंही जानेसे उपासना होगी यह विचार न करे क्षेत्रादिकोंमें जानेकी श्रद्धा त्याग दे, और जहां अपना चित्त स्वच्छ और एकाग्रतायुक्त होय तहाँही सुखसे बैठकर उपासना करे १८

कम्बले मृदुतल्पे वा व्याघ्रचर्मणि वा स्थितः ॥
विविक्तदेशे नियतः समग्रीवशिरस्तनुः ॥ १९ ॥

कम्बल मृदु कपास वस्त्र अथवा मृगचर्मपर स्थिर होकर एकान्त देशमें स्थित हो समान ग्रीवा और शरीरको सरल करके ॥ १९ ॥

अंत्याश्रमस्थः सकलानीन्द्रियाणि निरुध्य च ॥
भक्त्याथ स्वगुरुं नत्वा योगं विद्वान्प्रयोजयेत् २० ॥

विधिपूर्वक भस्म धारणकर और सम्पूर्ण इन्द्रियोंको रोककर तथा भक्तिपूर्वक अपने गुरुको प्रणाम करके, ज्ञान शास्त्रद्वारा ज्ञानकी प्राप्तिके निमित्त भक्तिसे प्राणायाम करे ॥ २० ॥

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्युक्तमनसा सदा ॥
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः ॥२१॥

जिसका अन्तःकरण मूढ और विवेकशून्य है उसकी इंद्रियें दुष्ट घोडोंकी समान हैं, अर्थात् जैसे दुष्ट घोडा सारथीके वशमें नहीं आता वैसे दुष्ट इंद्रियवाले उन्हें वश नहीं कर सकते ॥ २१ ॥

विज्ञानी यस्तु भवति युक्तेन मनसा सदा ॥
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥२२॥

और जो ज्ञानसंपन्न हैं उनके यत्न करनेसे सम्पूर्ण इंद्रियें मनके सहित वशमें होजाती हैं. जिस प्रकार सुशिक्षित अश्व सारथीके वशमें होजाता है ॥ २२ ॥

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्यमनस्कः सदाऽशुचिः ॥
न स तत्पदमाप्नोति संसारमधिगच्छति ॥ २३ ॥

और जो विवेकशून्य चंचलचित्त बाह्य और अन्तर शौचसे हीन और अनुभवज्ञानरहित हैं वे उस स्थानको नहीं प्राप्त होते, परन्तु निरंतर संसारमें ही भ्रमण करते हैं ॥ २३ ॥

विज्ञानी यस्तु भवति समनस्कः सदा शुचिः ॥
स तत्पदमवाप्नोति यस्माद्भूयो न जायते ॥ २४ ॥

और जो ज्ञानी स्थिरचित्त बाह्य अभ्यंतर पवित्रतासे युक्त है वे उस स्थानको प्राप्त होते हैं जहांसे फिर आना नहीं होता (न स पुनरावर्तते २) यह श्रुतिमें लिखा है ॥ २४ ॥

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनःप्रग्रह एव च ॥
सोऽध्वनः पारमाप्नोति ममैव परमं पदम् ॥ २५ ॥

जो विज्ञानरूपी सारथी मनरूपी लगाम धारण किये है इन्द्रियरूपी घोडे जुते शरीररूपी रथमें बैठा है वह संसाररूपी मार्गसे पार हो परमपद (मोक्ष) स्थानपर पहुँच जाता है ॥ २५ ॥

हृत्पुण्डरीकं विरजं विशुद्धं विशदं तथा ॥
विशोकं च विचिन्त्यात्र ध्यायेन्मां परमेश्वरम् २६॥

हृदयकमल कामादिदोषरहित शमदमादिगुणसम्पन्न स्वच्छ और शोकरहित करके उसमें मेरा ध्यान करना उचित है ॥ २६ ॥

अचिन्त्यरूपमव्यक्तमनन्तममृतं शिवम् ॥
आदिमध्यान्तरहितं प्रशांतं ब्रह्म कारणम् ॥ २७ ॥

जो अचिन्त्यस्वरूप सीमारहित है, जिससे श्रेष्ठ कोई दूसरा नहीं है, जो नाशरहित कल्याणस्वरूप आदि अन्त शून्य प्रशांत और सबका कारण है ॥ २७ ॥

एकं विभुं चिदानन्दमरूपमजमद्भुतम् ॥
शुद्धस्फटिकसंकाशमुमादेहार्धधारिणम् ॥ २८ ॥
सर्वव्यापक सच्चिदानन्दस्वरूप रूपरहित उत्पत्तिशून्य अ आश्चर्ययुक्त मुझ ब्रह्मरूपको शुद्ध स्फटिक मणिकी समान शरीर और अर्द्धांगमें पार्वतीको धारण किये ॥ २८ ॥

व्याघ्रचर्माम्बरधरं नीलकण्ठं त्रिलोचनम् ॥
जटाधरं चन्द्रमौलिं नागयज्ञोपवीतिनम् ॥ २९ ॥
व्याघ्रचर्म ओढे, नीलकंठ, त्रिलोचन, जटजूट धारण किये, चन्द्रमा शिरपर धरे, नागोंका यज्ञोपवीत पहरे ॥ २९ ॥

व्याघ्रचर्मोत्तरीयं च वरेण्यमभयप्रदम् ॥
कराभ्यामूर्ध्वहस्ताभ्यां बिभ्राणं परशुं मृगम् ॥
भूतिभूषितसर्वाङ्गं सर्वाभरणभूषितम् ॥ ३० ॥
व्याघ्र चर्मकाही उत्तरीय (दुपट्टा) ओढे, सर्व श्रेष्ठ भक्तोंको अभयदाता, पीछेको ओरके ऊंचे दोनों हाथोंमें मृग और परशु धारण किये, सब अंगमें विभूति लगाये, तथा सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित ॥ ३० ॥

एवमात्मारणिं कृत्वा प्रणवं चोत्तरारणिम् ॥ ध्यान-
निर्मथनाभ्यासात्साक्षात्पश्यति मां जनः ॥ ३१ ॥
इस प्रकारसे आत्माको अरणी और प्रणवको उत्तर अरणी करके उसका मथन करता हुआ मेरा ऊपर कहे अनुसार ध्यान करे तो यह मेरा साक्षात्कार पाता है, जब पत्नको

करते हैं तब अग्निके निमित्त खैर वा शमीकी दो लकड़ी के ऊपर नीचे रख अग्निके निमित्त उसे मथते हैं ॥ ३१ ॥

वेदवाक्यैरलभ्योऽहं न शास्त्रैर्नापि चेतसा ॥
ध्यानेन वृणुते यो मां सर्वदाहं वृणोमि तम् ॥ ३२ ॥

वेदवचन और शास्त्रोंके वचनसे मुझे कोई नहीं पासकता परन्तु जो एकाग्रचित्तसे सदैव मेरा ध्यान करता है, मैं उसे प्राप्त होता हूं और उसे फिर त्याग नहीं करता ॥ ३२ ॥

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः ॥
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेन लभेत माम् ॥ ३३ ॥

जो पापसे पराङ्मुख नहीं जिसकी तृष्णा शान्त नहीं श्रवण मनन निदिध्यासनसे जिसका मन समाधान नहीं है जिसका मन चंचल है ऐसा पुरुष केवल शास्त्रके अध्ययनसे मुझे प्राप्त नहीं करसकता ॥ ३३ ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिप्रपञ्चो यः प्रकाशते ॥
तद्ब्रह्माहमिति ज्ञात्वा सर्वबन्धैः प्रमुच्यते ॥ ३४ ॥

जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्थाका प्रपंच जिस साक्षीरूप अधिष्ठान ब्रह्मस्वरूपके द्वारा प्रकाशित होता है वह ब्रह्म मैं हूँ ऐसा यथार्थ जाननेसे यह सम्पूर्ण बन्धनोंसे मुक्त होजाता है ॥ ३४ ॥

त्रिषु धामसु यद्भोग्यं भोक्ता भोगश्च यद्भवेत् ॥
तेभ्यो विलक्षणः साक्षी चिन्मात्रोऽहं सदाशिवः ॥ ३५

तीनों अवस्थामें जो भोग पदार्थ जो भोक्ता और जो भोग्य वस्तु है, ये तीनों ब्रह्मकी ही सत्ताके कल्पित हैं उनका प्रकाशक गति करनेद्वारा सदाशिव मैंही हूँ ॥ ३५ ॥

कोटिमध्याह्नसूर्याभं चन्द्रकोटिसुशीतलम् ॥
चन्द्रसूर्याग्निनयनं स्मरेद्वक्त्रसरोरुहम् ॥ ३६ ॥

इस प्रकार निर्गुण कथन कर अब फिर मन्द अधिकारियों-को सगुणरूपका उपदेश करते हैं. मध्याह्नकालके करोडों सूर्यके समान तेजयुक्त और करोडों चन्द्रमाके समान शीतल सूर्य चन्द्रमा अग्नि जिसके नेत्र हैं उसके मुखकमलका स्मरण करे ॥ ३६ ॥

एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्त-रात्मा ॥ सर्वाध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च ॥ ३७ ॥

एकही परमात्मा सम्पूर्ण भूतोंमें गुप्त है सर्वव्यापी और सब भूतोंका अन्तरात्मा है, सबका अध्यक्ष और सब भूतोंमें निवास करनेवाला सबका साक्षी चित्तकी प्रेरणा करनेवाला निर्लेप और निर्गुण है ॥ ३७ ॥

एको वशी सर्वभूतान्तरात्माप्येकं बीजं नित्यदा यः करोति ॥ तं मां नित्यं येऽनुपश्यन्ति धीरा-स्तेषां शान्तिः शाश्वती नेतरेषाम् ॥ ३८ ॥

स्वाधीन सब भूतोंका आत्मा वह एकही देव है, मायारूप

प्रपंचका बीज प्रगट करता है, वह पुरुष मैंही हूँ मुझको जो धीर पुरुष शास्त्र और आचार्यके उपदेशसे साक्षात्कार करते हैं उनकोही निरन्तर शान्ति और कैवल्य मुक्ति होती है दूसरोंको नहीं ॥ ३८ ॥

अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव ॥ एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा न लिप्यते लोकदुःखेन बाह्यः ॥ ३९ ॥

जिस प्रकारसे एकही अग्नि सब संसारमें प्रविष्ट होकर उन काष्ठ लोह आदिमें सीधे टेढे चतुष्कोण आदिरूपमें उसी वस्तुके आकारसा हो रहा है, इसी प्रकार सबका अन्तरात्मा एकही है और शरीरमें प्राप्त होनेसे उसीके आकारसा प्रतीत होता है, यद्यपि उपाधिके वशीभूत होनेसे भिन्न २ प्रकारका प्रतीत होता है, तथापि सर्व लोकके दुःखसे वह दुःखी और सुखसे सुखी नहीं होता ॥ ३९ ॥

वेदह यो मां पुरुषं महान्तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात ॥ स एव विद्वानमृतोऽत्र भूयो नान्यस्तु पन्था अयनाय विद्यते ॥ ४० ॥

जो विद्वान् ज्ञानी मुझको सर्वान्तर्यामी महान व्यापक स्वप्रकाश, मायासे रहित आत्मस्वरूप जानता है, वही संसार बन्धनसे मुक्त होता है, इसके सिवाय मुक्तिके प्राप्त होनेका दूसरा उपाय नहीं है, तथा च श्रुतिः (वेदाहमेतं पुरुषं महा-

तमादित्यवर्णं तमसः परस्तात्॥ तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनाय) ॥ ४० ॥

हिरण्यगर्भं विदधामि पूर्वं वेदांश्च तस्मै प्रहिणोमि सोऽहम् ॥ तं देवमीड्यं पुरुषं पुराणं निश्चित्य मां मृत्युमुखात्प्रमुच्यते ॥ ४१ ॥

प्रथम सृष्टिके आरंभमें मैं ब्रह्माको उत्पन्न करके उसके निमित्त वेदको उपदेश करता, वही स्तुतिके योग्य पुराण पुरुष मैं हूं, जो इस निश्चयसे मुझे जानते हैं, वे मृत्युके मुखसे छूट जाते हैं तथा च श्रुतिः (यो वै ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै) इत्यादि श्रुतिमें प्रसिद्ध है ॥ ४१ ॥

एवं शान्त्यादियुक्तः सन्वेत्ति मां तत्त्वतस्तु यः ॥ निर्मुक्तदुःखसंतानः सोऽन्ते मय्येव लीयते ॥ ४२ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे उपासनाज्ञानफलं नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

इस प्रकार शान्ति आदि गुणोंसे युक्त हो जो मुझको तत्त्वसे जानता है वह दुःखोंसे छूटकर अन्तमें मुझको प्राप्त हो जाता है ४२

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु शिवराघवसंवादे भा० टी० उपासनापंचकयोगो नाम द्वादशोऽध्यायः ॥ १२ ॥

सूत उवाच ।

एवं श्रुत्वा कौशलेयस्तुष्टो मतिमतां वरः ॥
पप्रच्छ गिरिजाकान्तं सुभगं मुक्तिलक्षणम् ॥१॥

सूतजी बोले—बुद्धिमानोंमें श्रेष्ठ रघुनाथजी इस प्रकार श्रवण करके प्रसन्न हो गिरिजापतिसे मुक्तिका लक्षण पूछने लगे ॥ १॥

श्रीराम उवाच ।

भगवन्करुणाविष्टहृदय त्वं प्रसीद मे ॥
स्वरूपं लक्षणं मुक्तेः प्रब्रूहि परमेश्वर ॥ २ ॥

श्रीरामचंद्र बोले—हे कृपासागर भगवन्! आप मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुक्तिका स्वरूप और लक्षण वर्णन कीजिये ॥ २ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

सालोक्यमपि सारूप्यं सार्ष्ट्यं सायुज्यमेवं च ॥
कैवल्यं चेति तां विद्धि मुक्तिं राघव पञ्चधा ॥३॥

श्रीभगवान् बोले—हे राम! सालोक्य, सारूप्य, सार्ष्ट्य, सायुज्य और कैवल्य ये मुक्तिके पांच भेद हैं ॥ ३ ॥

मां पूजयति निष्कामः सर्वदाऽज्ञानवर्जितः ॥
स मे लोकं समासाद्य भुंक्ते भोगान्यथेप्सितान् ॥४॥

जो कामनारहित अज्ञानसे हीन होकर सर्वदा मेरा पूजन करते हैं वे मेरे लोकको प्राप्त होकर सालोक्य मुक्तिको प्राप्त होते हैं और अनेक प्रकारके इच्छित भोग भोगते हैं ॥ ४ ॥

ज्ञात्वा मां पूजयेद्यस्तु सर्वकामविवर्जितः ॥
मया समानरूपः सन्मम लोके महीयते ॥ ५ ॥

और जो मेरा स्वरूप जानकर निष्काम बुद्धिसे मेरा भजन करता है वह मेरे स्वरूपको प्राप्त होकर अनेक प्रकारसे अभिलाषित भोगोंको भोगता है, इसे सारूप्य मुक्ति कहते हैं ॥ ५ ॥

इष्टापूर्तादिकर्माणि मत्प्रीत्यै कुरुते तु यः ॥ सोऽपि तत्फलमाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ६ ॥

जो पुरुष मेरी प्रीतिके निमित्त इष्टपूर्तादिकर्मोंको करता है, वह भी उसी फलको प्राप्त होता है इसमें संशय नहीं ॥ ६ ॥

यत्करोति यदश्नाति यज्जुहोति ददाति यत् ॥
यत्तपस्यति तत्सर्वं यः करोति मदर्पणम् ॥ ७ ॥
मल्लोके स श्रियं भुंक्ते मत्तुल्यं प्राभवं भजेत् ॥

जो कर्त्ता है, जो भोजन करता है और जो अग्निमें हवन करता है, जो देता है और जो कुछ तपस्या आदि करता है, वह सब मेरेही अर्पण करता है, वह मेरे लोककी सब लक्ष्मी जगत्के कर्तापन आदिसे व्यतिरिक्त सब दिव्य संपत्ति भोगता है इसे सार्ष्ट्य मुक्ति कहते हैं ॥ ७ ॥

यस्तु शान्त्यादियुक्तः सन्मामात्मत्वेन पश्यति ८॥
स जायते परं ज्योतिरद्वैतं ब्रह्म केवलम् ॥
आत्मस्वरूपावस्थानं मुक्तिरित्यभिधीयते ॥ ९ ॥

जो शांतिआदि साधनसे युक्त होकर श्रवण मनन निदिध्यासनपूर्वक मुझेही आत्मारूप जानता है वह अद्वैत स्वप्रकाश ब्रह्मके तद्रूपको प्राप्त होता है, जो जीवका यथार्थ स्वरूप है इस स्वरूपसे अवस्थान करनेका नाम सायुज्य मुक्ति है ॥ ८ ॥ ९ ॥

सत्यं ज्ञानमनन्तं सदानन्दं ब्रह्म केवलम् ॥
सर्वधर्मविहीनं च मनोवाचामगोचरम् ॥ १० ॥

सत्य ज्ञान अनन्त आनंद इत्यादि लक्षण युक्त और सब धर्मरहित मन और वाणीसे परे ॥ १० ॥

सजातीयविजातीयपदार्थानामसंभवात् ॥
अतस्तद्व्यतिरिक्तानामद्वैतमिति संज्ञितम् ॥ ११ ॥

सजातीय और विजातीय पदार्थोंके उसमें न होनेसे इस ब्रह्मको कहते हैं ॥ ११ ॥

मत्वा रूपमिदं राम शुद्धं यदभिधीयते ॥
मय्येव दृश्यते सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् ॥ १२ ॥

हे राम ! यह जो शुद्ध स्वरूप वर्णन किया है इसे आत्मरूप जानकर सम्पूर्ण स्थावर जंगम जगत्को मेरेही रूपमें देखता है ॥ १२ ॥

व्योम्नि गन्धर्वनगरं यथा दृष्टं न दृश्यते ॥
अनाद्यविद्यया विश्वं सर्वं मय्येव कल्प्यते ॥ १३ ॥

जिस प्रकार आकाशमें गन्धर्वनगर नहीं है और उसकी मिथ्या प्रतीति होती है इसी प्रकारसे यह अनादि अविद्यासे

उत्पन्न हुआ जगत् मुझमें कल्पना किया जाता है वास्तविक मिथ्या है ॥ १३ ॥

मम स्वरूपज्ञानेन यदाऽविद्या प्रणश्यति ॥
तदैक एव वर्त्तेऽहं मनोवाचामगोचरः ॥ १४ ॥

जिस समय मेरे स्वरूपके ज्ञानसे अविद्या नष्ट होजाती है तब मन वाणीसे परे एक मैंही विद्यमान रहता हूं ॥ १४ ॥

सदैव परमानन्दः स्वप्रकाशश्चिदात्मकः ॥
न कालः पञ्चभूतानि न दिशो विदिशश्च न ॥
मदन्यन्नास्ति यत्किञ्चित्तदा वर्त्तेऽहमेकलः ॥१५॥

मैं नित्य परमानंद स्वप्रकाश और चिदात्मा हूं, काल दिशा विदिशा पंचभूत इस स्वरूपमें कुछ नहीं है, मेरे सिवाय दूसरी कोई वस्तु नहीं है, मैं केवल एकही विद्यमान रहता हूं ॥ १५ ॥

न संदृशे तिष्ठति मे स्वरूपं न चक्षुषा पश्यति मां तु कश्चित् ॥ हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तं ये मां विदुस्ते ह्यमृता भवन्ति ॥ १६ ॥

मेरे निर्गुण स्वरूप कोई नील पीतादि आकार और वर्णका नहीं है, और इन चर्मचक्षुसे भी कोई मुझे देखनेको समर्थ नहीं हो सकता, जो कोई हृदयमें बुद्धिसे मेरे स्वरूपको जानते हैं वेही ज्ञानी मुक्त हो जाते हैं ॥ १६ ॥

श्रीराम उवाच ।

कथं भगवतो ज्ञानं शुद्धं मर्त्यस्य जायते ॥
तत्रोपायं हर ब्रूहि मयि तेऽनुग्रहो यदि ॥ १७ ॥

श्रीरामचंद्रजी बोले–हे भगवन् ! मनुष्योंको शुद्ध ज्ञान किस प्रकारसे होता है, हे शंकर ! जो आपकी कृपा मेरे ऊपर है तो इसका उपाय वर्णन कीजिये ॥ १७ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

विरज्य सर्वभूतेभ्य आविरिञ्चिपदादपि ॥
घृणां वितत्य सर्वत्र पुत्रमित्रादिकेष्वपि ॥ १८ ॥

श्रीभगवान् बोले–ब्रह्मलोकपर्यन्त दिव्य देहकोभी नाशवान् समझकर भार्या, मित्र, पुत्रादि इन सबको क्लेशदाता और अनित्य समझकर इनसे चित्तकी वृत्ति पृथक् करे ॥ १८ ॥

श्रद्धालुर्मुक्तिमार्गेषु वेदान्तज्ञानलिप्सया ॥
उपायनकरो भूत्वा गुरुं ब्रह्मविदं व्रजेत् ॥ १९ ॥

और श्रद्धापूर्वक ज्ञान प्राप्त होनेके निमित्त मोक्षशास्त्र वेदांतमें निष्ठाशील होकर उसीके जाननेको उपाय न लेता हुआ ब्रह्मवेत्ता गुरुके निकट जाय ॥ १९ ॥

तमर्थं पुरतः कृत्वा दण्डवत्प्रणमेद्गुरुम् ॥ उत्थाय
चाञ्जलिं कृत्वा वाञ्छितार्थान्निवेदयेत् ॥ २० ॥

उस गुरुके आगे अपने हाथमें लाया हुआ पदार्थ रखके

दंडवत् नमस्कार करे फिर उठिके हाथ जोडके इच्छित अर्थका निवेदन करे ॥ २० ॥

सेवाभिः परितोष्यैनं चिरकालं समाहितः ॥
सर्ववेदान्तवाक्यार्थं शृणुयात्सुसमाहितः ॥ २१ ॥

बहुत कालतक सावधान हो इन्हें सेवासे संतुष्ट करे और मन लगाकर सब वेदान्तके वाक्योंका अर्थ श्रवण करे ॥ २१ ॥

सर्ववेदान्तवाक्यानामपि तात्पर्यनिश्चयम् ॥
श्रवणं नाम तत्प्राहुः सर्वे ते ब्रह्मवादिनः ॥ २२ ॥

और सम्पूर्ण वेदान्तके वाक्योंका तात्पर्य भी निश्चय करले (यह नहीं कि अहं ब्रह्म करता फिरे) इसका नाम ब्रह्मवादियोंने श्रवण कहा है ॥ २२ ॥

लोहमण्यादिदृष्टान्तयुक्तिभिर्यद्विचिन्तनम् ॥
तदेव मननं प्राहुर्वाक्यार्थस्योपबृंहणम् ॥ २३ ॥

लोह मणी आदिक दृष्टान्त सद्युक्तिसे जैसे कि, चुम्बककी शक्तिसे लोहा भ्रमण करता है, इसी प्रकार ब्रह्मकी सत्तासे जगत् भ्रमण करता है श्रवणको पुष्ट करके मनन करे अर्थात् उसका चिन्तन करे वाक्यार्थके विचारका ही नाम मनन कहा है ॥ २३ ॥

निर्मोहो निरहङ्कारः समः सङ्गविवर्जितः ॥
सदा शान्त्यादियुक्तः सन्नात्मन्यात्मानमीक्षते ॥
यत्सदा ध्यानयोगेन तन्निदिध्यासनं स्मृतम् ॥ २४ ॥

ममता और अहंकार रहित सबमें समान संगवर्जित शांति आदि साधनसम्पन्न होकर निरन्तर ध्यानयोगसे आत्माका आत्मसे ही ध्यान करनेको निदिध्यासन कहते हैं ॥ २४ ॥

सर्वकर्मक्षयवशात्साक्षात्कारोऽपि चात्मनः ॥
कस्यचिज्जायते शीघ्रं चिरकालेन कस्यचित् ॥ २५ ॥

सम्पूर्ण कर्मके क्षय हो जानेसे जो आत्मका साक्षात्कार है, किसीको शीघ्र और किसीको चिरकालमें होता है जिसे प्रतिबन्धक नहीं होता उसे शीघ्र और जिसे प्रतिबन्धक होते हैं उसे देरमें होता है ॥ २५ ॥

कूटस्थानीह कर्माणि चिरकालार्जितान्यपि ।
ज्ञानेनैव विनश्यंति न तु कर्मायुतैरपि ॥ २६ ॥

जो कुछ जीवके किये हुए और करोडों जन्मके संग्रह किये कर्म हैं वे ज्ञानसे ही नष्ट होते हैं, कर्म चाहे दशसहस्र करोडनसे नष्ट नहीं होते ॥ २६ ॥

ज्ञानादूर्ध्वं तु यत्किञ्चित्पुण्यं वा पापमेव वा ॥
क्रियते बहु वाल्पं वा न तेनायं विलिप्यते ॥ २७ ॥

ज्ञान होनेपर जो कुछ पुण्य वा पाप थोडा या बहुत किया जाता है, उससे यह प्राणी लिप्त नहीं होता ॥ २७ ॥

शरीरारम्भकं यत्तु प्रारब्धं कर्म तन्मतम् ॥
तद्भोगेनैव नष्टं स्यान्न तु ज्ञानेन नश्यति ॥ २८ ॥

और जो इस प्राणीके शरीर निर्माणका हेतु प्रारब्धका कर्म है, वह भोगनेसे ही नष्ट होगा, ज्ञानसे नहीं ॥ २८ ॥

निर्मोहो निरहंकारो निर्लेपः संगवर्जितः ॥
सर्वभूतेषु चात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि ॥
यः पश्यन्संचरत्येष जीवन्मुक्तोऽभिधीयते ॥ २९॥

जिसको मोह अहंकार नहीं है, जो सम्पूर्ण संगसे रहित है सम्पूर्ण प्राणियोंको आत्मामें और सम्पूर्ण प्राणियोंमें जो आत्माको देखता है इस प्रकार ज्ञानयुक्त विचरता हुआ प्राणी जीवन्मुक्त कहाता है, कारण कि वह प्रारब्धकर्मक्षयके निमित्त विचरता है ॥ २९ ॥

अहिनिर्मोचनी यद्वद्दृक्षुः पूर्वं भयप्रदा ॥
ततोऽस्य न भयं किंचित्तद्वद्द्रष्टुरयं जनः ॥ ३० ॥

साँपकी कैंचली सर्प सहित जिस प्रकार देखनेवालेको भय देती है और सर्पके शरीरसे छूटनेपर कुछ भी भय नहीं देती इसी प्रकार मायायुक्त आत्माके होनेसे अनेक प्रकारसे संसार-भय प्रतीत होते हैं। वही जीवन्मुक्त होनेसे फिर कहीं किसी प्रकारसे भयभीत नहीं होता ॥ ३० ॥

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य वशं गताः ॥
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावदनुशासनम् ॥ ३१ ॥

जिस समय इस प्राणीके हृदयकी वासना संपूर्ण नष्ट हो

जाती है और वैराग्य प्राप्त होता है, तभी यह प्राणी अमृत हो जाता है, यही वेदान्तशास्त्रकी मुख्य शिक्षा है ॥ ३१ ॥

मोक्षस्य नहि वासोऽस्ति न ग्रामान्तरमेव वा ॥
अज्ञानहृदयग्रन्थिनाशो मोक्ष इति स्मृतः ॥ ३२ ॥

जिस प्रकार कैलास वैकुण्ठ आदि दिव्य लोक हैं, इस प्रकार मोक्ष कोई लोक नहीं है, मुक्त किसी ग्रामान्तरका निवासी नहीं होता, केवल हृदयकी अज्ञानग्रन्थिके नष्ट होजानेसे मुक्त होता है ॥ ३२ ॥

वृक्षाग्रच्युतपादो यः स तदेव पतत्यधः ॥
तद्वज्ज्ञानवतो मुक्तिर्जायते निश्चितापि तु ॥ ३३ ॥

जिसका वृक्षके अग्रभागसे चरण आगे पडता है उसी समय नीचे गिरता है, इसी प्रकार ज्ञानीपुरुषोंको ज्ञान होते ही मुक्तिकी प्राप्ति होजाती है, इस संसारसे वह तत्काल छूट जाता है ॥ ३३ ॥

तीर्थे चण्डालगेहे वा यदि वा नष्टचेतनः ॥
परित्यजन्देहमिमं ज्ञानादेव विमुच्यते ॥ ३४ ॥

जीवन्मुक्त पुरुष तीर्थमें वा चाण्डालके घरमें देह त्यागन करे अथवा ब्रह्मका चिन्तन करता हुआ देहका त्यागन करे किंवा अचेतन होकर मृतक हो जाय, वह ज्ञानके बलसे मुक्त ही हो जाता है ॥ ३४ ॥

संवीतो येन केनाश्नन्भक्ष्यं वाऽभक्ष्यमेव वा ॥
शयानो यत्र कुत्रापि सर्वात्मा मुच्यतेऽत्र सः ॥ ३५ ॥

जीवन्मुक्त किसी प्रकारके वस्त्र धारण करे वा नग्न, भक्ष्य अथवा अभक्ष्य कुछ भी खाय चाहे जहां शयन करे वह प्रारब्धकर्मके क्षय होनेसे मुक्त हो जाता है ॥ ३५ ॥

क्षीरादुद्धृतमाज्यं यत्क्षिप्तं पयसि तत्पुनः ॥
न तेनैवैकतां याति संसारे ज्ञानवांस्तथा ॥ ३६ ॥

जिस प्रकार दूधमेंसे निकाला हुआ घृत यदि फिर दूधमें डालो वह घृत उसमें नहीं मिलता इसी प्रकार ज्ञानवान् संसारमें विरक्त होकर फिर जगतमें आसक्त होता नहीं ॥ ३६ ॥

नित्यं पठति योऽध्यायमिमं राम शृणोति वा ॥
स मुच्यते देहबन्धादनायासेन राघव ॥ ३७ ॥

हे रामचन्द्र ! जो इस अध्यायको नित्य पढते और सुनते हैं वह अनायास देहबंधनसे छूट जाते हैं ॥ ३७ ॥

अतः संयतचित्तस्त्वं नित्यं पठ महीपते ॥
अनायासेन तेनैव सर्वथा मोक्षमाप्स्यसि ॥ ३८ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु० शिवराघवसंवादे त्रयोदशोऽध्यायः ॥ १३ ॥

हे राम ! तुम्हारा अन्तःकरण जो संशयके वश हो रहा है इस कारण तुम नित्य इस अध्यायका पाठ करो इससे अनायास तुम्हारी मुक्ति हो जायगी ॥ ३८ ॥

इति श्रीपद्म० शिवगी० भा० टी० मोक्षनि० त्रयोदशोऽध्यायः १३

श्रीराम उवाच ।

भगवन्यदि ते रूपं सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥
निष्कलं निष्क्रियं शान्तं निरवद्यं निरञ्जनम् ॥ १ ॥

शिवजीसे ब्रह्मसाक्षात्कारकी विधि सुनकर अब दूसरे साधनोंसे प्रश्न करते हुए रामचन्द्रजी बोले—हे भगवन् ! यद्यपि तुम्हारा रूप सच्चिदानन्दात्मक निरवयव क्रियाशून्य और निर्दोष है ॥ १ ॥

सर्वधर्मविहीनं च मनोवाचामगोचरम् ॥
सर्वव्यापिनमात्मानमीक्षते सर्वतः स्थितम् ॥ २ ॥

तथा सब धर्मोंसे परे मन और वाणीके अगोचर तुमको सर्वव्यापक होनेसे जीव सर्वस्थानमें स्थित आत्मा स्वरूपसे देखता है ॥ २ ॥

आत्मविद्यातपोमूलं तद्ब्रह्मोपनिषत्परम् ॥
अमूर्तं सर्वभूतात्माकारं कारणकारणम् ॥ ३ ॥

आत्मविद्या और तप ही जिसका मूल साधन है, जो उपनिषदोंका मुख्य तात्पर्य है, जो मूर्तिरहित सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा अर्थात् सब जीव जिसके अंश हैं जो कारणका कारण अदृश्य स्वरूप है ॥ ३ ॥

यत्तदृश्यमग्राह्यं वा तद्ग्राह्यं कथं भवेत् ॥
अत्रोपायमजानानस्तेन खिन्नोऽस्मि शंकर ॥ ४ ॥

जो अतिसूक्ष्म और इन्द्रियोंसे अग्राह्य है वह ब्रह्म ग्राह्य

कैसे हो सकता है, उस सूक्ष्ममें चित्तकी वृत्ति किस प्रकार हो सकती है, यह मुझे संदेह है इसीसे बुद्धि व्यग्र है इसका उपाय आप वर्णन कीजिये ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

शृणु राजन्प्रवक्ष्यामि तत्रोपायं महाभुज ॥
सगुणोपासनाभिस्तु चित्तैकाग्र्यं विधाय च ॥
स्थूलसौरांभिकान्यायात्तत्र चित्तं प्रवर्तयेत् ॥ ५ ॥

श्रीशिवजी बोले–हे महाभुज रामचंद्र ! सुनो मैं इस विषयमें उपाय कहता हूं. प्रथम सगुण उपासना करते २ चित्तको एकाग्र करे और स्थूलसौरांभिकान्यायसे निर्गुण स्वरूपमें चित्तकी वृत्ति प्रवृत्त करे, स्थूलसौरांभिकान्याय उसको कहते है कि, प्रियमनुष्यको जिस प्रकार मृगजल दिखाकर यह यथार्थ जल है ऐसा प्रतारणासे बुलाकर फिर वास्तविक जल दिखाते हैं इसी प्रकार प्राणोको प्रथम उपासनादिका उपदेश कर पीछे ब्रह्मज्ञान कथन करते हैं ॥ ५ ॥

अहमन्नमये पिण्डे स्थूलदेहे तनूभृताम् ॥
जन्मव्याधिजरामृत्यु नेलये वर्तते दृढा ॥ ६ ॥

और इस प्रकार जाने कि इस अन्नके पिंड स्थूल देहमें जन्म मृत्यु व्याधि यही दृढतासे विद्यमान हैं, अर्थात् निश्चय ही इसकी दशा बदलती रहती है ॥ ६ ॥

आत्मबुद्धेरहंममाकारकराम्निर्न्नेर हायते ॥
आत्मा न जायते नित्यो म्रियते वा कथंचन ॥ ७ ॥

वैसे स्थूल देहमें प्राणीको अहंभावसे जो आत्मबुद्धि दृढ हो जाती है वह नहीं मिटती, आत्मा कभी जन्म नहीं लेता और इसका नाश भी नहीं होता कारण कि, वह नित्य है ॥ ७ ॥

संजायतेऽस्ति विपरिणमते वर्धते तथा ॥
क्षीयते नश्यतीत्येते षड्भावा वपुषः स्मृताः ॥ ८ ॥

अब शरीरकी अवस्था वर्णन करते हुये इसकी निस्सारता प्रतिपादन करते हैं । उत्पत्ति (होना) अस्ति, परिपक्वता, वृद्धि, क्षय और नाश यह छः अवस्था इस शरीरकी है ॥ ८ ॥

आत्मनो न विकारित्वं घटस्थनभसो यथा ॥
एवमात्मा वपुस्तस्मादिति संचिन्तयेद्बुधः ॥ ९ ॥

और घटमें स्थित आकाश जिस प्रकार निर्विकार है इसी प्रकार इस देहमें आत्मा विकार रहित है, इस प्रकार देह और आत्मा इन दोनोंके धर्म परस्पर विरुद्ध हैं, अज्ञानी जन अविद्यासे देहको आत्मा मानते हैं और ज्ञानी देहसे आत्माको पृथक् देखते हैं ॥ ९ ॥

मूषानिक्षिप्तहेमाभः कोशः प्राणमयोऽत्र तु ॥
वर्ततेऽन्तरतो देहे बद्धः प्राणादिवायुभिः ॥ १० ॥
कर्मेन्द्रियैः समायुक्तश्चलनादिक्रियात्मकः ॥
क्षुत्पिपासापराभूतो नायमात्मा जडो यतः ॥ ११ ॥

घडिय में गलाकरके डाले सुवर्णकी कान्तिके समान प्राणमय कोश है, यह स्थूल देहके अन्तर प्राणादि वायुसे

वर्तमान है परन्तु शब्दादि इंद्रियोंसे युक्त वक्तादि कर्मोंसे युक्त क्षुधापिपासासे व्याप्त और जड होनेके कारण यह आत्मा नहीं है ॥ १० ॥ ११ ॥

चिद्रूप आत्मा येनैव स्वदेहमनुपश्यति ॥
आत्मैवाहं परं ब्रह्म निर्लेपः सुखनीरधिः ॥ १२ ॥

आत्मा चैतन्यरूप है जिसके द्वारा यह जीव अपने शरीरको देखता है आत्माही परब्रह्म निर्लेप और सुखका सागर है॥ १२॥

न तदश्नाति किंचैवं न तदश्नाति कश्चन ॥
ततः प्राणमये कोशे कोशोऽस्त्येव मनोमयः ॥
स संकल्पविकल्पात्मा बुद्धीन्द्रियसमाहितः ॥ १३॥

अज्ञान इस ब्रह्मका ग्रास नहीं करसकता, न ब्रह्म किसी वस्तुका ग्रास करता है अर्थात् वह अनामय परिपूर्ण सर्वत्र सुखस्वरूप है, उसे कार्य कारणकी अपेक्षा नहीं है, उस प्राणमय कोशके अन्तर्गत मनोमयकोश है, वह संकल्प विकल्परूप बुद्धि और इंद्रियोंसे समायुक्त है ॥ १३ ॥

कामः क्रोधस्तथा लोभो मोहो मात्सर्यमेव च ॥
मदश्चेत्यरिषड्वर्गो ममतेच्छादयोऽपि च ॥
मनोमयस्य कोशस्य धर्मा एतस्य तत्र तु ॥ १४॥

काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य और मद यह शत्रुओंका षड्वर्ग और ममता इच्छादिक यह सम्पूर्ण मनोमयकोशके धर्म हैं ॥ १४ ॥

या कर्मविषया बुद्धिर्वेदशास्त्रार्थनिश्चिता ॥
सा तु ज्ञानेन्द्रियैः सार्धं विज्ञानमयकोशतः ॥ १५॥

जो कर्मविषयिणी बुद्धि वेदशास्त्रसे निश्चित की गई है, वह ज्ञान इंद्रियोंके सहित विज्ञानमय कोशमें स्थित रहती है ॥१५॥

इह कर्तृत्वाभिमानी स एव तु न संशयः ॥
इहामुत्र गतिस्तस्य स जीवो व्यावहारिकः॥१६॥

इसमें कर्तृत्वपनका अभिमानी निःसन्देह वह जीव विद्यमान है। जो इस लोक तथा परलोकमें गमन करता है व्यवहारमें जिसको जीव कहते हैं ॥ १६ ॥

व्योमादिसात्त्विकांशेभ्यो जायन्ते धीन्द्रियाणि तु ॥
व्योम्नः श्रोत्रं भुवो घ्राणं जलाज्जिह्वाथ तेजसः॥१७॥
चक्षुर्वायोस्त्वगुत्पन्ना तेषां भौतिकता ततः ॥
व्योमादीनां समस्तानां सात्त्विकांशेभ्य एव तु॥१८॥

आकाशादिके सात्त्विक अंशसे ज्ञानेंद्रियोंकी उत्पत्ति होती है, आकाशसे श्रोत्र, पृथ्वीसे घ्राण, जलसे जिह्वा और तेजसे चक्षु और वायुसे त्वचा उत्पन्न होती हैं। इस प्रकार यह इन्द्रिय पांचभौतिक हैं, जीवत्वप्राप्तिके तीन शरीर हैं, स्थूल, सूक्ष्म और कारण, स्थूलका अन्तः सूक्ष्म और सूक्ष्मका अन्तः कारणशरीर है, सूक्ष्म शरीरको ही लिंगशरीर कहते हैं, इन तीनों शरीरोंमें पांच कोश रहते हैं, अन्न

मय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनंदमय, स्थूल शरीरमें अन्नमयकोश है, सूक्ष्म शरीरमें प्राणमय और मनोमय और विज्ञानमय कोशोंमें अन्नमयकोशसे वर्णन करके लिंगशरीरके तीनों कोश कहकर लिंगशरीरके अवयवोंका वर्णन किया है ॥ १७ ॥ १८ ॥

जायेते बुद्धिमनसी बुद्धिः स्यान्निश्चयात्मिका ॥
वाक्पाणिपादपायूपस्थानि कर्मेन्द्रियाणि तु ॥ व्योमादीनां रजोंऽशेभ्यो व्यस्तेभ्यस्तान्यनुक्रमात् १९

इन पांचभूतोंके सात्त्विकादि अंशसे बुद्धि और मन उत्पन्न होते हैं, जिसमें बुद्धि निश्चयात्मिका और मन संशयात्मक है और वचन हाथ, पाद, पायु, उपस्थ ये पांच कर्मेन्द्रिय तो आकाशादिकोंके रजोगुण अंशसे क्रमपूर्वक उत्पन्न होते हैं॥ १९॥

समस्तेभ्यो रजोंऽशेभ्यः पञ्च प्राणादिवायवः ॥
जायन्ते सप्तदशकमेवं लिङ्गशरीरकम् ॥ २० ॥

और उन सबके रजोगुण समान मिलनेसे पांच प्राणादि वायु उत्पन्न होते हैं, यही पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पांच प्राण, मन और बुद्धि मिलकर सत्रह अवयवोंसे लिंग शरीरकी उत्पत्ति होती है ॥ २० ॥

एतं लिङ्गशरीरं तु नभागः पिण्डवत्तनः ॥
पारस्परं व्यासयो ... ॥ २१ ॥

यह लिंगशरीर तपायेहुए लोहखण्डकी समान (गोल)

है, इस कारण परस्परके अध्यास पडनेसे साक्षी चैतन्यसे युक्त है ॥ २१ ॥

तदानन्दमयः कोशो भोक्तृत्वं प्रतिपद्यते ॥
विद्याकर्मफलादीनां भोक्तेहामुत्र स स्मृतः ॥२२॥

जहां साक्षी चैतन्य लिंग शरीरसे अध्यासको प्राप्त होता है वही आनंदमय कोश है, उस आनंदमय कोशका जो कर्तृत्वपनका अभिमानी है, वही उपासना और कर्म फलसे इस लोक तथा परलोकमें कर्मफलका भोगनेवाला कहा जाता है ॥ २२ ॥

यदाध्यासं विहायैष स्वस्वरूपेण तिष्ठति ॥
अविद्यामात्रसंयुक्तः साक्ष्यात्मा जायते तदा ॥२३॥

और जिस समय निद्रावस्थामें यही आत्मा लिंगशरीरके अध्यासको छोडकर केवल अपने स्वरूपमें अविद्यासंयुक्त रहता है, तब इसकी साक्षी संज्ञा है ॥ २३ ॥

द्रष्टान्तःकरणादीनामनुभूतस्मृतेरपि ॥
अतोऽन्तःकरणाध्यासादन्यस्तत्वेन चात्मनि ॥
भोक्तृत्वं साक्षिता चेति द्वैधं तस्योपपद्यते ॥२४॥

अन्तःकरणादि इन्द्रिय और इनकी वृत्ति अनुभव और स्मृति इनका द्रष्टा होनेसे अन्तःकरणका अध्यास होनेपर आत्माको साक्षित्व और भोक्तृत्व यह दोनोंही योग्य होते हैं अंतःकरणका अध्यास हुआ तबही साक्षित्व और केवल (अन्तःकरणका अध्यास नहीं ऐसा) हुआ तब भोक्तृत्व होता है ॥ २४ ॥

आतपश्चापि तच्छाया तत्प्रकाशे विराजते ॥
एको भोजयिता तत्र भुङ्क्तेऽन्यः कर्मणः फलम् २८

इसके उपरान्त "ऋतं पिबन्तौ सुकृतस्य लोके गुहां प्रविष्टौ परमे परार्द्धे । छायातपौ ब्रह्मविदो वदन्ति पञ्चाग्नयो ये च त्रिणाचिकेताः" इस श्रुतिको कहते हैं, आतप बिना आच्छादित बिंबरूप ईश्वर छाया, आच्छादित बिंबरूप जीव यह दोनों ब्रह्मके प्रकाशसे प्रकाशित हैं इन दोनोंमें एक जीव भोक्ता होनेसे कर्मफलका भोक्ता है और ईश्वर द्रष्टा होनेसे भुगाता है ॥ २८ ॥

क्षेत्रज्ञं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु ॥
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि प्रग्रहं तु मनस्तथा ॥२६॥

क्षेत्रज्ञ जीवात्माको रथी, शरीरको रथ, बुद्धिको सारथी, मनको लगाम कहते हैं सो तू जान ॥ २६ ॥

इन्द्रियाणि हयान्विद्धि विषयांस्तेषु गोचरान् ॥
इन्द्रियैर्मनसा युक्तं भोक्तारं विद्धि पूरुषम् ॥२७॥

इन्द्रियोंको स्वरूप जानना और यह इन्द्रियरूपी अश्व रूपादि विषयरूपी स्थानमें विचरते हैं, इन्द्रिय और मनके सहित यह आत्मा भोक्ता कहाता है वास्तवमें उपाधि बिना यह आत्मा शुद्ध है कदाचित कर्तृत्व भोक्तृत्वको प्राप्त नहीं होता । तात्पर्य यही है कि, रथी तो रथमें बैठा है, सारथी और घोडे रथको जिधर लेजावैं उधरही जाता है और यदि

दुष्ट घोडे हुए तो सारथीका भी कहना न मानकर रथ लेकर कहीं गढेमें डाल देते हैं, इसी प्रकार दुष्ट इन्द्रियें इस शरीररूपी रथको विषयोंमें ले जाकर पटकती हैं तब सब इन्द्रियोंके सहित आत्मा दुःखी प्रतीत होता है ॥ २७ ॥

एवं शान्त्यादियुक्तः सन्नुपास्ते यः सदा द्विजः ॥
उद्घाट्योद्घाट्य चैकैकं यथैव कदलीतरोः ॥ २८॥
वल्कलानि ततः पश्चाल्लभते सारमुत्तमम् ॥
तथैव पञ्चभूतेषु मनः संक्रमते क्रमात् ॥
तेषां मध्ये ततः सारमात्मानमपि विन्दति ॥२९॥

इस प्रकारसे जो ब्राह्मण शान्ति आदिसे युक्त होकर उपासना करता है वह जिस प्रकारसे कदलीके वल्कलको बराबर उतारते चले जाओ तौ उसमें वल्कही निकलते हैं पश्चात् सार प्राप्त होता है इसी प्रकार पंचकोशमें क्रमसे उपासना करते और उनमे चित्त हटाते तथा उन्हें असाररूप जानते हुए सबके अन्तःसारभूत आत्माको प्राप्त होता है ॥२८॥२९॥

एवं मनः समाधाय संयतो मनसि द्विजः ॥
अथ प्रवर्तयेच्चित्तं निराकारे परात्मनि ॥ ३० ॥

इस प्रकार मनको सावधान करके और पंचकोशका ज्ञान करके जो मन स्थिर करता है तब उसका चित्त निराकार परमात्मामें लगजाता है ॥ ३० ॥

ततो मनः प्रगृह्णाति परमात्मानमव्ययम् ॥
यत्तदद्दश्यमग्राह्यमस्थूलाद्युक्तिगोचरम् ॥ ३१ ॥

तब यह मन केवल परत्माकोही ग्रहण करता है जो केवल अदृश्य, अग्राह्य, स्थूल सूक्ष्मादि धर्मसे परे है, उसमें प्राप्त होकर निश्चल होजाता है, फिर चलायमान नहीं होता ॥ ३१ ॥

श्रीराम उवाच ।

भगवञ्छ्रवणेनैव प्रवर्तन्ते जनाः कथम् ॥
वेदशास्त्रार्थसंपन्ना यज्वानः सत्यवादिनः ॥ ३२ ॥

श्रीरामचंद्र बोले-हे भगवन् ! जब श्रवणादि साधनद्वारा आत्मस्वरूपकी प्राप्ति हो जाती है तो वेदशास्त्रके जाननेवाले यज्ञशील सत्यवादी उसके श्रवण करनेमें प्रवृत्त क्यों नहीं होते ३२

शृण्वन्तोऽपि तथात्मानं जानते नैव केचन ॥
ज्ञात्वापि मन्यते मिथ्या किमेतत्तव मायया ॥ ३३ ॥

और कोई सुनकरभी आत्माको जान नहीं सकते, और कोई जानकरभी मिथ्या मानतेहैं, क्या यह तुम्हारी माया है ॥ ३३ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

एवमेव महाबाहो नात्र कार्या विचारणा ॥
देवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ॥ ३४ ॥

श्रीशिवजी बोले-हे महाबाहो ! यह ऐसेही है इसमें कुछ सन्देह नहीं, मेरी त्रिगुणात्मक मायाका उल्लंघन करना महा कठिन है ॥ ३४ ॥

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरंति ते ॥
अभक्ता ये महाबाहो मम श्रद्धाविवर्जिताः ॥ ३५॥

जो मेरी शरणागत आकर मुझको प्राप्त होजाते हैं वेही इस मायाको तरते हैं, हे महाभुज। जो अभक्त हैं और जिनकी श्रद्धा मेरे विषय नहीं है ॥ ३५ ॥

फलं कामयमानास्ते चैहिकामुष्मिकादिकम् ॥
क्षयिष्णवल्पं सातिशयं ततः कर्मफलं मतम् ॥ ३६॥

वे इस लोक और परलोकमें अनेक प्रकारके फलकी इच्छा करनेवाले हैं उनको कर्मानुसार फल मिलता है वे सुख भोगकर भी थोडे कालमें इस लोकमें प्राप्त होते हैं कारण कि, उन्हें तो कर्मफलही इष्ट है और कर्मफल क्षय होनेवाला है। तथा थोडा और ऐसे लोकोंमें उन फलोंको भोगते हैं जहां जहां अल्प सुख है और शीघ्र नष्ट हो जाता है ॥ ३६ ॥

तदविज्ञाय कर्माणि ये कुर्वन्ति नराधमाः ॥
मातुः पतन्ति ते गर्भे मृत्योर्वक्त्रे पुनःपुनः ॥ ३७॥

इस बातको न जानकर जो अधम मनुष्य कर्मोंको करते हैं वे माताके गर्भमें होकर वारंवार मृत्युके मुखमें पडते हैं ॥ ३७ ॥

नानायोनिषु जातस्य देहिनो यस्य कस्यचित् ॥
कोटिजन्मार्जितैः पुण्यैर्मयि भक्तिः प्रजायते ॥ ३८॥

अनेक प्रकारकी योनियोंमें उत्पन्न हुए किसी एक प्राणीकी करोडों जन्मके संचित किये पुण्यसे मेरे विषे भक्ति होती है॥ ३८॥

स एव लभते ज्ञानं मद्भक्तः श्रद्धयान्वितः ॥
नान्यकर्माणि कुर्वाणो जन्मकोटिशतैरपि॥ ३९ ॥

वही श्रद्धायुक्त मेरा भक्त ज्ञानको प्राप्त होता है और दूसरा करोडों जन्मभी कर्म करनेसे मुझे प्राप्त नहीं होता ॥ ३९ ॥

ततः सर्वं परित्यज्य मद्भक्तिं समुदाहर ॥
सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ॥
अहं त्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ४०

इस कारण हे राम ! और सब त्यागनकर केवल मेरी भक्ति करो । दूसरे और सब धर्मोंका त्यागन करके एक मेरी शरणमें हो मैं तुमको सब पापोंसे छुडाकर मुक्त करूंगा तुम शोच कुछ मत करो ॥ ४० ॥

यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत् ॥ ४१॥
यत्तपस्यासि राम त्वं तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥
ततः परतरा नास्ति भक्तिर्मयि रघूत्तम ।' ४२ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासु०-
शिवराघवसंवादे पञ्चकोशोपपादनं नाम

चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

हे राम ! तुम कुछ कर्म करते जो भोजन करते जो हवन

करके और जो देते हो तथा तप करते हो वह सब मेरे अर्पण करो, हे राम ! इससे अधिक मेरेमें दृढ भक्ति होनेका दूसरा साधन नहीं है इसका तात्पर्य यह है कि शरीर इंद्रिय और प्राण तथा मनके जो जो धर्म हैं उनका त्याग करके मुझको आश्रित हो अर्थात् मुझे प्राप्त हो ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे शिवगीता० १० ज्वालाप्रसादमिश्रकृत भा० टी० शिवराघवसंवादे चतुर्दशोऽध्यायः ॥ १४ ॥

श्रीराम उवाच ।

भक्तिस्ते कीदृशी देव जायते वा कथंचन ॥
यया निर्वाणरूपत्वं लभते मोक्षमुत्तमम् ॥
तद्ब्रूहि गिरिजाकान्त मयि तेऽनुग्रहो यदि ॥१॥

श्रीरामचन्द्र बोले-हे भगवन् ! आपकी भक्ति कैसी है और वह किस प्रकार उत्पन्न होती है जिसके प्राप्त होनेसे यह जीव निर्वाण होजाता है और मुक्तपदवी प्राप्त करता है, हे शंकर! यह आप सब वर्णन कीजिये, जिससे संसारसे निवृत्ति प्राप्त हो ॥१॥

श्रीभगवानुवाच ।

यो वेदाध्ययनं यज्ञं दानानि विविधानि च ॥
मदर्पणधिया कुर्यात्स मे भक्तः स मे प्रियः ॥ २॥

शिवजी बोले-जो वेदाध्ययन दान यज्ञ सम्पूर्ण मेरेमें अर्पणकी बुद्धिसे करता है वह मेरा भक्त और मेरा प्रिय है वह इस प्रकार है कि-

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराःप्राणाः शरीरं गृहं पूजा ते विषयोपभोगरचना निद्रा समाधिस्थितिः । संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणि सर्वा गिरो यद्यत्कर्म करोमि तत्तद्खिलं शम्भो तवाराधनम् ॥ "

अर्थ—यह कि, यह शरीर शिवालय है, इसमें सच्चिदानंद आप हो, बुद्धिरूप श्रीपार्वतीजी हैं, आपके साथ चलनेवाले नौकर प्राण हैं और जो मैं विषयानन्दके निमित्त खाता, पीता, देखता, सुनता, बोलता, स्पर्श करताहूं, यही आपकी पूजा है, निद्रा समाधि है, फिरना आपकी प्रदक्षिणा है, वचन आपकी स्तुति है, हे शिव ! इस प्रकार मैं आपका आराधन करताहूँ. आप मेरे ऊपर कृपा करो. इस प्रकार आराधन करे, कर्मोंको ऐसे मेरे अर्पण करे ॥ २ ॥

अथ भस्म समादाय विशुद्धं श्रोत्रियालयात् ॥
अग्निरित्यादिभिर्मन्त्रैरभिमंत्र्य यथाविधि ॥ ३ ॥

अग्निहोत्रकी पवित्र भस्म लाकर अथवा श्रोत्रिय ब्राह्मणके स्थानसे लाकर " अग्निरिति भस्म " इत्यादि मन्त्रोंसे यथाविधि अभिमंत्रित कर ॥ ३ ॥

उद्धूलयति गात्राणि तेन चार्चति मामपि ॥
तस्मात्परतरा भक्तिर्मम राम न विद्यते ॥ ४ ॥

अपने शरीरमें उसे लगाकर और भस्मद्वाराही जो मेरा अर्चन करता है, हे राम ! उससे अधिक मेरी भक्ति करनेवाला दूसरा नहीं है ॥ ४ ॥

सर्वदा शिरसा कण्ठे रुद्राक्षान्धारयेत्तु यः ॥
पञ्चाक्षरीजपरतः स मे भक्तः स मे प्रियः ॥ ५ ॥

जो प्राणी मस्तक और कण्ठमें रुद्राक्षको धारण करता है, और (नमः शिवाय) इस पंचाक्षरी विद्याका जप करता है वह मेरा भक्त है और प्यारा है ॥ ५ ॥

भस्मच्छन्नो भस्मशायी सर्वदा विजितेन्द्रियः ॥
यस्तु रुद्रं जपेन्नित्यं चिन्तयेन्मामनन्यधीः ॥ ६ ॥

भस्म लगानेवाला, भस्मपर शयन करनेवाला, सदा जितेन्द्रिय जो सदा रुद्रसूक्त जपता और अनन्य बुद्धिसे मेरा चिन्तन करता है ॥ ६ ॥

स तेनैव च देहेन शिवः संजायते स्वयम् ॥
जपेद्यो रुद्रसूक्तानि तथाथर्वशिरः परम् ॥ ७ ॥

वह उसी देहसे शिवस्वरूप होजाता है, जो रुद्रसूत्र वा अथर्वशीर्ष मन्त्रोंका जप करता है ॥ ७ ॥

कैवल्योपनिषत्सूक्तं श्वेताश्वतरमेव च ॥
ततः परतरो भक्तो मम लोके न विद्यते ॥ ८ ॥

कैवल्योपनिषद् वा श्वेताश्वतर उपनिषद्का जो जप करता है उससे अधिक मेरा दूसरा भक्त इस लोकमें नहीं है ॥ ८ ॥

अन्यत्र धर्मादन्यस्मादन्यत्रास्मात्कृताकृतात् ॥
अन्यत्र भूताद्भव्याच्च यत्प्रवक्ष्यामि तच्छृणु ॥ ९ ॥

धर्मसे विलक्षण अधर्मसे विलक्षण, कार्य और कारणसे

रे मूल और भविष्यकालसे भी परे जिसको मैं करता हूँ सो सुन ॥ ९ ॥

यदंति यत्पदं वेदाः शास्त्राणि विविधानि च ॥
सर्वोपनिषदां सारं दध्नो घृतमिवोद्धृतम् ॥ १० ॥

जिस वस्तुको वेद और सब शास्त्र वर्णन करते हैं जो संपूर्ण उपनिषदोंमेंसे सार ग्रहण किया है जैसे दहीमेंसे घृत ॥ १० ॥

यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति मुनयः सदा ॥
तत्ते पदं संग्रहेण ब्रवीम्योमिति यत्पदम् ॥ ११ ॥

जिसकी इच्छा करके मुनिजन ब्रह्मचर्य धारण करते हैं; वह अकार उकार मकारात्मक हमारा पद है, सो मैं तुझसें संक्षेपसे वर्णन करता हूं ॥ ११ ॥

एतदेवाक्षरं ब्रह्म चैतदेवाक्षरं परम् ॥
एतदेवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत् ॥ १२ ॥

यही अक्षर परब्रह्म और सगुणब्रह्म, निर्गुणब्रह्म है, इसी अक्षरब्रह्मके जाननेसे ब्रह्मलोकको प्राप्त होकर मुक्त होजाता है ॥ १२ ॥

एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् ॥
एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते ॥ १३ ॥

यही उत्तम आधार है यही उत्तम तारक है इसको जानके ब्रह्मलोकमें पूजित होता है ॥ १३ ॥

छन्दसां यस्तु धेनूनामृषभत्वेन चोदितः ॥
इदमेवावधिः सेतुरमृतस्य च धारणात् ॥ १४ ॥

जो वेदरूपी धेनुओंमें श्रेष्ठ है ऐसा वेदान्त प्रतिपादन करता है यही मोक्षका कारण करनेवाला और संसारसागरका सेतु है. तथा च श्रुतिः " यश्छन्दसामृषभो विश्वरूपश्छन्दोभ्योऽध्यमृतात्संबभूव " इति तै० ॥ १४ ॥

मेदसा पिहितं कोशं ब्रह्मणो यत्परं मतम् ॥
भूतमस्तस्य मात्राः स्युरकारोकारको तथा॥१५॥

वह वस्तु क्या है अब उसका वर्णन करते हैं वह मेदसे आच्छादित हुए कोश अर्थात् हृदयाकाशमें जो ब्रह्म है उसे ओंकार कहते हैं। यही परममंत्र है और इसीमें सब लोक निवास करते हैं, तथा च श्रुतिः—" सोऽयमात्माऽध्यक्षरमोंकारोधिमात्रं पादमात्रा मात्राश्च पादा अकार उकारो मकारः" इति माण्डु० " ओमिति ब्रह्म । ओमितीदं सर्वम्" अर्थात् यह ओंकारही ब्रह्म और सब कुछ है ॥ १५ ॥

मकारश्चावसानेऽर्धमात्रेति परिकीर्तिता ॥
पूर्वत्र भूश्च ऋग्वेदो ब्रह्माष्टवसवस्तथा ॥
गार्हपत्यश्च गायत्री गङ्गा प्रातःसवस्तथा ॥१६॥

उसकी चार मात्रा हैं अकार उकार और मकार और अन्तकी कारणरूप आधी मात्रा है पहली अकाररूप मात्रामें भूलोक ऋग्वेद, ब्रह्मदेव, आठ वसु, गार्हपत्य अग्नि, गायत्री छन्द और प्रातःसवन ये आठ देव निवास करते हैं ॥१६॥

द्वितीया च भुवो विष्णू रुद्रोऽनुष्टुब्यजुस्तथा ॥
यमुना दक्षिणाग्निश्च माध्यन्दिनसवस्तथा ॥ १७ ॥
दूसरी उकार मात्रामें भुवर्लोक, विष्णु, रुद्र, अनुष्टुप् छन्द, यजुर्वेद, यमुनानदी, दक्षिणाग्नि, माध्यंदिन सवन ये देवता निवास करते हैं ॥ १७ ॥

तृतीया च स्वः सामान्यादित्यश्च महेश्वरः ॥
अग्निराहवनीयश्च जगती च सरस्वती ॥ १८ ॥
तीसरी मकार मात्रामें स्वर्लोक, सामवेद, आदित्य, महेश्वर, आहवनीयाग्नि, जगती छन्द और सरस्वती नदी ॥ १८ ॥

तृतीयं सवनं प्रोक्तमथर्वत्वेन यन्मतम् ॥
चतुर्थी यावसानेऽर्धमात्रा सा सोमलोकगा ॥ १९ ॥
और अथर्ववेद तृतीयसवन ये वास करते हैं और जो चौथी मात्रा है वह सोमलोकगा। ॥ १९ ॥

अथर्वाङ्गिरसः संवर्तकोऽग्निर्मरुतस्तथा ॥
विराट् सभ्यावसथ्यौ च शुतुद्रिर्यज्ञपुच्छकम् ॥ २० ॥
अथर्वांगिरस गाथा संवर्तक अग्नि महर्लोक, विराट्, सभ्य और आवसथ्य अग्नि, शुतुद्रीनदी और यज्ञपुच्छ ये देवता निवास करते हैं " अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोंकार आत्मैव संविशत्यात्मनाऽऽत्मानं य एवं वेद य एवं वेद " अर्थात् जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीन अवस्थाओंसे परे समाधिक तुरीया अवस्थारूप आत्मा ही है, यह वाचक

वाच्यरूप वाणी मनका मूल अज्ञान दूर करनेसे व्यवहारके अयोग्य है, तथा प्रपंचरहित शिवस्वरूप और अद्वैत है। यह उच्चारण किया हुआ ॐकार आत्माही है ऐसे जो जानता है वह अपने आत्मासे परमार्थरूप आत्मामें प्रवेश करता है, और जन्मके कारणोंका लय कर फिर उत्पन्न नहीं होता ॥ २० ॥

प्रथमा रक्तवर्णा स्याद्द्वितीया भास्वरा मता ॥
तृतीया विद्युदाभा स्याच्चतुर्थी शुक्लवर्णिनी ॥२१॥

पहली मात्रा रक्तवर्ण, दूसरी भास्वर(प्रकाशयुक्त)वर्ण, तीसरी बिजलीके वर्णकी तथा चौथी मात्रा शुभ्र वर्ण है ॥ २१ ॥

सर्वं जातं जायमानं तदोङ्कारे प्रतिष्ठितम् ॥
विश्वं भूतं च भुवनं विचित्रं बहुधा तथा ॥ २२ ॥

जो कुछ उत्पन्न हुआ है और जो कुछ उत्पन्न होगा स्थावर जंगमात्मक अनेक प्रकारका यह जगत् ॐकारमेंही प्रतिष्ठित है ॥ २२ ॥

जातं च जायमानं च तत्सर्वं रुद्र उच्यते ॥
तस्मिन्नेव पुनः प्राणाः सर्वमोङ्कार उच्यते ॥ २३ ॥

भूत भविष्यरूप यह संसार रुद्ररूपही है और रुद्रमें प्राण और उसमें भी ॐकार स्थित हैं तात्पर्य यह है शिव और ओङ्कार एक स्वरूप हैं ॥ २३ ॥

प्रविलीनं तदोङ्कारे परं ब्रह्म सनातनम् ॥
तस्मादोङ्कारजापी यः स मुक्तो नात्र संशयः ॥ २४ ॥

वह शिवरूप सनातन ब्रह्म ॐकारमेंही वर्तमान है इस कारण ॐकारका जपनेहारा निःसन्देह मुक्त हो जाता है ॥ २४ ॥

श्रौताग्नेः स्मार्तवह्नेर्वा शैवाग्नेर्वा समाहृतम् ॥
भस्माभिमन्त्र्य यो मां तु प्रणवेन प्रपूजयेत् ॥
तस्मात्परतरो भक्त इह लोके न विद्यते ॥ २५ ॥

श्रौत अग्निसे अथवा स्मार्त अग्निसे अथवा शैवाग्निसे उत्पन्न हुई भस्मका जो ॐकारसे अभिमंत्रित करके ॐकारद्वारा जो मेरा पूजन करता है, उससे अधिक संसारमें मेरा दूसरा प्रियभक्त नहीं है ॥ २५ ॥

ग्रामाग्नेर्वनवह्नेर्वा भस्मापाद्याभिमन्त्रितम् ॥ यो
विलिम्पति गात्राणि स शूद्रोऽपि विमुच्यते ॥२६॥

घरकी अग्नि अथवा बनकी अग्निकी भस्मको ॐकारसे अभिमंत्रित करके जो अपने शरीरमें लगावे वह शूद्र भी मुक्तिको प्राप्त हो जाता है ॥ २६ ॥

कुशपुष्पैर्बिल्वदलैः पुष्पैर्वा गिरिसंभवैः ॥
यो मामर्चयते नित्यं प्रणवेन प्रियो हि सः ॥ २७ ॥

दर्भोंसे, बिल्वपत्र तथा औरभी वनके पर्वतके उत्पन्न हुए फूलोंसे ॐकारद्वारा जो मेरी नित्य पूजा करता है वह मेरा प्रिय है ॥ २७ ॥

पुष्पं फलं समूलं वा पत्रं सलिलमेव वा ॥
यो दद्यात्प्रणवे मह्यं तत्कोटिगुणितं भवेत् ॥२८॥

पुष्प, फल, मूल, पत्र किंवा जलसे जो ओंकारयुक्त मेरे निमित्त दान करता है, वह करोड गुना होजाता है ॥ २८ ॥

अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः ॥ यस्या-स्त्यध्ययनं नित्यं स मे भक्तः स मे प्रियः ॥ २९ ॥

किसी प्राणीमात्रकी हिंसा न करनी, सत्य बोलना, चोरी न करनी, बाह्याभ्यंतर शौचयुक्त, इंद्रियनिग्रह करनेवाले, वेदाध्ययनमें तत्पर जो मेरे भक्त हैं वे मेरे प्यारे हैं ॥ २९ ॥

प्रदोषे यो मम स्थानं गत्वा पूजयते तु माम् ॥ स परां श्रियमाप्नोति पश्चान्मयि विलीयते॥३०॥

जो कोई प्रदोषके समय मेरे स्थानमें जाकर मेरी पूजा करता है, वह अत्यन्त लक्ष्मीको प्राप्त होता है और अन्तमें मुझमें लय हो जाता है ॥ ३० ॥

अष्टम्यां च चतुर्दश्यां पर्वणोरुभयोरपि ॥
भूतिभूषितसर्वांगो यः पूजयति मां निशि ॥
कृष्णपक्षे विशेषेण स मे भक्तः स मे प्रियः॥३१॥

अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णिमा, अमावास्या इन तिथियोंमें जो सर्वांगमें भस्म लगाकर रात्रिके समय मेरा पूजन करता है वह मेरा भक्त प्रिय है ॥ ३१ ॥

एकादश्यामुपोष्यैव यः पूजयति मां निशि ॥
सोमवारे विशेषेण स मे भक्तो न नश्यति ॥ ३२॥

जो एकादशीके दिन व्रत रहकर प्रदोषके समय मेरा पूजन करता है और विशेष करके सोमवारके दिन मेरा पूजन करता है, वह मेरा भक्त मुझे प्रिय है ॥ ३२ ॥

पञ्चामृतैः स्नापयेद्यः पञ्चगव्येन वा पुनः ॥
पुष्पोदकैः कुशजलैस्तस्मान्नान्यः प्रियो मम ॥ ३३ ॥

जो पंचामृत, पंचगव्य, पुष्प, सुगन्धयुक्त जल अथवा कुशके जलसे मुझे स्नान कराता है उससे अधिक मेरा कोई प्रिय नहीं है ॥ ३३ ॥

पयसा सर्पिषा वापि मधुनेक्षुरसेन वा ॥
पक्वाम्रफलजेनापि नारिकेलजलेन वा ॥ ३४ ॥

दूध, घृत, मधु, इक्षुरस (गन्नेका रस) पके आमके फल अथवा नारियलके जलसे ॥ ३४ ॥

गन्धोदकेन वा मां यो रुद्रमन्त्रमनुस्मरन् ॥
अभिषिञ्चेत्ततो नान्यः कश्चित्प्रियतरो मम ॥ ३५ ॥

अथवा जो गंधयुक्त जलसे रुद्रमंत्र उच्चारण करता हुआ मेरा अभिषेक करता है उससे अधिक प्यारा दूसरा मुझे नहीं है ॥ ३५ ॥

आदित्याभिमुखो भूत्वा ऊर्ध्वबाहुर्जले स्थितः ॥
मां ध्यायन्रविबिम्बस्थमथर्वाङ्गिरसं जपेत् ॥ ३६ ॥
आविशन्मे शरीरेऽसौ गृहं गृहपतिर्यथा ॥
बृहद्रथन्तरं वामदेव्यं देवव्रतानि च ॥ ३७ ॥

और जो जलमें स्थित हो सूर्यकी ओर मुख किये ऊपरको बाहें उठाये सूर्यके बिंबमें मेरा ध्यान करता हुआ अथर्वांगिरसका जप करता है वह इस प्रकार मेरे शरीरमें प्रवेश करता है, जैसे गृहपति घरमें प्रवेश करता है और बृहद्रथन्तर वामदेव और देवव्रत सामको ॥ २६ ॥ ३७ ॥

तथा योगानाज्यदोहांश्च यो गायति ममाग्रतः ॥
इह श्रियं परां भुक्त्वा मम सायुज्यमाप्नुयात् ३८

तथा योग आज्यदोह मन्त्रोंको जो मेरे आगे गान करता है वह इस लोकमें परम सुखको भोगकर अन्तमें मेरे स्थानको प्राप्त होता है ॥ ३८ ॥

ईशावास्यादिमन्त्रान्यो जपेन्नित्यं ममाग्रतः ॥
मत्सायुज्यमवाप्नोति मम लोके महीयते ॥ ३९ ॥

अथवा जो ईशावास्यादि मन्त्रोंको सावधान हो मेरे सन्मुख जप करता है वह मेरी सायुज्य मुक्तिको प्राप्त हो मेरे लोकमें अक्षय सुख भोग करता है ॥ ३९ ॥

भक्तियोगो मया प्रोक्त एवं रघुकुलोद्भव ॥
सर्वकामप्रदो मत्तः किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥४०॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासु०
शिवराघवसंवादे भक्तियोगो नाम
पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

हे रघुनाथजी ! यह मैंने भक्तियोग तुम्हारे प्रति वर्णन किया, यह मनुष्योंको सब कामनाका देनेहारा है अब और क्या सुननेकी इच्छा करते हो ॥ ४० ॥

इति श्रीपद्मपुराणे ब्रह्मविद्यायां० शिवराघ० भा० टी० भक्तियोगो नाम पंचदशोऽध्यायः ॥ १५ ॥

श्रीराम उवाच ।

भगवन्मोक्षमार्गो यस्त्वया सम्यगुदाहृतः ॥
तत्राधिकारिणं ब्रूहि तत्र मे संशयो महान् ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्र बोले—हे भगवन् ! आपने मोक्षमार्ग सम्पूर्ण वर्णन किया अब इसका अधिकारी कहिये, इसमें मुझको बड़ा संदेह है आप विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिये ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

ब्रह्मक्षत्रविशः शूद्राः स्त्रियश्चात्राधिकारिणः ॥
ब्रह्मचारी गृहस्थो वाऽनुपनीतोथवा द्विजः ॥२॥

श्रीभगवान् बोले—हे राम ! ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, स्त्री, ब्रह्मचारी, गृहस्थ तथा विना यज्ञोपवीत हुआ ब्राह्मण ॥२॥

वनस्थो वाऽवनस्थो वा यतिः पाशुपतव्रती ॥
बहुनात्र किमुक्तेन यस्य भक्तिः शिवार्चने ॥ ३ ॥

वानप्रस्थ, जिसकी स्त्री मृतक होगई हो संन्यासी, पाशुपतव्रत करनेहारे इसके अधिकारी हैं, और बहुत कहनेसे क्या है जिसके अन्तःकरणमें शिवजीके पूजनकी प्रबल भक्ति हो ॥ ३ ॥

स एवात्राधिकारी स्यान्नान्यचित्तः कथञ्चन ॥
जडोऽन्धो बधिरो मूको निःशौचः कर्मवर्जितः ॥४॥

वही इसमें अधिकारी है और जिसका चित्त दूसरी ओर लगा हुआ है वह इसमें अधिकारी नहीं तथा मूर्ख अंधे बहरे मूक शौचाचाररहित, स्नान संध्यादि विहित कर्मोंसे रहित ॥४॥

अज्ञोपहासका भक्ता भूतिरुद्राधिकारिणः ॥
लिंगिनो यश्च वा द्वेष्टि ते नैवात्राधिकारिणः ॥५॥

अज्ञोंका उपहास करनेवाले, भक्तिहीन, विभूति रुद्राक्षधारी, पाशुपतव्रतवालोंसे द्वेष करनेवाले, चिह्नधारी इनमेंसे किसीका भी इस शास्त्रमें अधिकार नहीं है ॥ ५ ॥

यो मां गुरुं पाशुपतव्रतं द्वेष्टि धराधिप ॥
विष्णुं वा न स मुच्येत जन्मकोटिशतैरपि ॥ ६ ॥
अनेककर्मसक्तोऽपि शिवज्ञानविवर्जितः ॥
शिवभक्तिविहीनश्च संसारी नैव मुच्यते ॥७ ॥

जो मुझसे अथवा उपदेश करनेवाले गुरुसे पाशुपतके व्रतधारण करनेवालोंसे वा विष्णुसे द्वेष करता है, उसका करोड जन्ममें भी उद्धार नहीं होता, आज कलके उन पुरुषोंको इस श्लोकके ऊपर विचार करना चाहिये, जो अज्ञानवश एक दूसरेसे द्रोह करते हैं वह सब एकही रूप हैं शिव तथा विष्णुमें कोई भी भेद नहीं है, भेद माननेवालोंकी गति नहीं होती इसमें प्रमाण (स ब्रह्मा स शिवः स हरिः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्)

अर्थात् वही परमात्मा शिव हरि इन्द्र अक्षर परम स्वराट् है (एकं रूपं बहुधा यः करोति) वही एक अनेक रूपको धारण करता है और चाहे अनेक प्रकारके यज्ञादिकर्ममें तत्पर हो, और शिवज्ञानसे रहित हो तो शिवकी भक्ति न होनेके कारण वह संसारसे मुक्त नहीं होता ॥ ६ ॥ ७ ॥

आसक्ताः फलरागेण ये त्ववैदिककर्मणि ॥
दृष्टमात्रफलास्ते तु न भक्ता विधिकारिणः ॥८॥

जो वेदबाह्य धर्मोंमें केवल फलकी इच्छा करके आसक्त होते हैं, उन्हें केवल दृष्टमात्र फलकी प्राप्ति होती है वे मोक्ष शास्त्रके अधिकारी नहीं हैं ॥ ८ ॥

अविमुक्ते द्वारकायां श्रीशैले पुण्डरीकके ॥
देहान्ते तारकं ब्रह्म लभते मदनुग्रहात् ॥ ९ ॥

काशी, द्वारका, श्रीशैल पर्वत, व्याघ्रपुर इन क्षेत्रोंमें शरीर त्यागनेसे इस पुरुषको मेरी कृपासे तारक ब्रह्मकी प्राप्ति होती है ॥ ९ ॥

यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् ॥
विद्या तपश्च कीर्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥ १० ॥

जिसके हाथ पैर और सम्पूर्ण इन्द्रिय, तथा मन वशमें हैं विद्या तप और कीर्ति विद्यमान है, वही तीर्थका फल प्राप्त करते हैं विकारी मनवाले तीर्थका फल प्राप्त नहीं करसकते ॥ १० ॥

विप्रस्यानुपनीतस्य विधिरेवमुदाहृतः ॥
नाभिव्याहारयेद्ब्रह्म स्वधानिनयनादृते ॥ ११ ॥

जिस ब्राह्मणका यज्ञोपवीत नहीं हुआ है उसे अधिकार है परन्तु वह वेदका उच्चारण नहीं कर सकता केवल माता पिताके श्राद्धकर्ममें उच्चारण कर सकता है ॥ ११ ॥

स शूद्रेण समस्तावद्यावद्वेदान्न जायते ॥
नामसंकीर्तने ध्याने सर्व एवाधिकारिणः ॥ १२ ॥

जबतक ब्राह्मणका उपनयन नहीं होता, तबतक वह शूद्रके ही समान है, नाम संकीर्तन और ध्यानमें तो सबही अधिकारी हैं ॥ १२ ॥

संसारान्मुच्यते जन्तुः शिवतादात्म्यभावनात् ॥
तथा दानं तपो वेदाध्ययनं चान्यकर्म वा ॥
सहस्रांशं तु नार्हन्ति सर्वदा ध्यानकर्मणः ॥ १३ ॥

शिवजीमें तादात्म्य ध्यानसे अर्थात् (शिवोऽहं) इस प्रकार अन्तःकरणकी एक वृत्ति करनेसे यह प्राणी संसारसे पार हो जाता है जिस प्रकार ध्यान तप वेदाध्ययन तथा दूसरे कर्म हैं यह ध्यान करनेके सहस्र भागकी भी तो समान नहीं होसकते ॥ १३ ॥

जातिमाश्रममङ्गानि देशं कालमथापि वा ॥
आसनादीनि कर्माणि ध्यानं नापेक्षते क्वचित् १४

जाति, आश्रम, अंग, देश, काल, किंवा आसनादि साधन यह कोई भी ध्यानयोगके समान नहीं हैं ॥ १४ ॥

गच्छंस्तिष्ठञ्जपन्वापि शयानो वान्यकर्मणि ॥
पातकेनापि वा युक्तो ध्यानादेव विमुच्यते ॥१५॥

चलते फिरते बैठते उठते बोलते शयन करते, अथवा दूसरे कार्योंमें भी युक्त हो, और अनेक पातकोंसे युक्त हो वह भी ध्यान करनेसे मुक्त हो जाता है ॥ १५ ॥

नेहाभिक्रमनाशोऽस्ति प्रत्यवायो न विद्यते ॥
स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात्॥१६॥

इस ध्यानयोगके करनेसे नाश नहीं होता, नित्यनैमित्तिक कर्मके समान इसमें प्रत्यवाय नहीं है, यह थोडासा अनुष्ठान किया भी प्राणीको महाभयसे रक्षा करता है ॥ १६ ॥

आश्चर्ये वा भये शोके क्षुते वा मम नाम यः ॥
व्याजेन वा स्मरेद्यस्तु स याति परमां गतिम्॥१७॥

अतिआश्चर्य अथवा भय और शोक प्राप्त हुआ हो वा छींकने अथवा और कोई रोगमें जो किसी बहानेसे भी मेरा नाम उच्चारण करता है वह परमगतिको प्राप्त होजाता है ॥१७॥

महापापैरपि स्पृष्टो देहान्ते यस्तु मां स्मरेत् ॥
पञ्चाक्षरीं वोच्चरति स मुक्तो नात्र संशयः ॥ १८ ॥

महापापीभी यदि देहान्तमें मेरा स्मरण करे वो (नमःशिवाय) इस पंचाक्षरी विद्याका उच्चारण करे तो निःसन्देह उसकी मुक्ति हो जाती है ॥ १८ ॥

विश्वं शिवमयं यस्तु पश्यत्यात्मानमात्मना ॥
तस्य क्षेत्रेषु तीर्थेषु किं कार्यं वान्यकर्मसु ॥ १९ ॥

जो अपने आत्मासे ही आत्माको देखते सब संसारको शिवरूप देखते हैं उनको क्षेत्र तीर्थ वा दूसरे कर्मोंके करनेसे क्या लाभ है उन्हें करनेकी आवश्यकता नहीं ॥ १९ ॥

सर्वेण सर्वदा कार्यं भूतिरुद्राक्षधारणम् ॥ नित्यं शिवं शिवोक्तेन शिवभक्तिमभीप्सता ॥ २० ॥

विभूति और रुद्राक्ष सदा सबको धारण करना चाहिये, शिवभक्ति करनेवाले योगी हों अथवा न हों सब रुद्राक्ष धारण करें जिन्हें शिवभक्ति प्राप्त होनेकी इच्छा हो ॥ २० ॥

मर्त्यभस्मसमायुक्तो रुद्राक्षान्यस्तु धारयेत् ॥
महापापैरपि स्पृष्टो मुच्यते नात्र संशयः ॥ २१ ॥

जो अग्निहोत्रकी भस्म और रुद्राक्षको धारण करता है वह महापापी होगा तोभी निःसंदेह मुक्त हो जायगा ॥ २१ ॥

अन्यानि शैवकर्माणि करोतु न करोतु वा ॥
शिवनाम जपेद्यस्तु सर्वदा मुच्यते तु सः ॥ २२ ॥

और शिव उपासनाके कर्म करे अथवा न करे जो केवल शिवका नाम भी जपता है वह सदा मुक्तस्वरूप है ॥ २२ ॥

अन्तकाले तु रुद्राक्षान्विभूतिं धारयेत्तु यः ॥

महापापोपपापौघैरपि स्पृष्टो नराधमः ॥ २३ ॥
सर्वथा नोपसर्पन्ति तं जनं यमकिंकराः ॥ २४ ॥

अन्तकालमें जो रुद्राक्ष और विभूतिको धारण करता है, उसे चाहे महापापभी लगे हों नरोंमें नीच भी हो किसी प्रकारसे भी यमके दूत उसे स्पर्श करनेको समर्थ नहीं होते ॥ २३ ॥ २४ ॥

बिल्वमूलमृदा यस्तु शरीरमुपलिम्पति ॥
अन्तकालेऽन्तकजनैः स दूरीक्रियते नरः ॥ २५॥

जो कोई बेलवृक्षके जडकी मिट्टी शरीरमें लगाता है उसके निकट यमदूत किसी प्रकारसे नहीं आसकते ॥ २५ ॥

श्रीराम उवाच।

भगवन्पूजितः कुत्र कुत्र वा त्वं प्रसीदसि ॥
तदत्रहि मम जिज्ञासा वर्तते महती विभो ॥ २६ ॥

श्रीरामचंद्र बोले–हे भगवन् ! किन मूर्तियोंमें पूजन करनेसे आप प्रसन्न होते हो, यह जाननेकी मुझे बडी इच्छा है, सो आप कृपाकर कहिये ॥ २६ ॥

ईश्वर उवाच।

मृदा वा गोमयेनापि भस्मना चन्दनेन वा ॥
सिकताभिर्दारुणा वा पाषाणेनापि निर्मिता ॥
लोहेन वाथ रङ्गेण कांस्यखर्परपित्तलैः ॥ २७ ॥

श्रीभगवान् बोले—मृत्तिका, गोबर, भस्म, चन्दन, बालुका, काष्ठ, पाषाण, लोहखण्ड, केशरादि रंग, कांसी, खर्पर (जस्त), पीतल ॥ २७ ॥

ताम्ररौप्यसुवर्णैर्वा रत्नैर्नानाविधैरपि ॥
अथवापारदेनैव कर्पूरेणाथवा कृता ॥ २८ ॥

तॉबा, रूपा, सुवर्ण अथवा अनेक प्रकारके रत्न, पारा अथवा कपूर ॥ २८ ॥

प्रतिमा शिवलिंगं वा द्रव्यैरेतैः कृतं तु यत् ॥
तत्र मां पूजयेत्तेषु फलं कोटिगुणोत्तरम् ॥ २९ ॥

इसमें जो अपनेको प्राप्त होसके और जो इष्ट हो उससे शिवलिंगकी मूर्ति निर्माण करे, इस प्रकार प्रीतिसे मेरी उपासना करे तो कोटिगुणा फल होता है ॥ २९ ॥

मृद्दारुकांस्यलोहैश्च पाषाणेनापि निर्मिता ॥
गृहिणां प्रतिमा कार्या शिवं शश्वदभीप्सता॥३०॥

गृहस्थी पुरुषोंको उचित है कि, मृत्तिका, काष्ठ, लोह, कांसी अथवा पाषाणकी प्रतिमा करे, उसमें पूजन करनेसे गृहस्थियोंको सदा आनंदकी प्राप्ति होती है ॥ ३० ॥

आयुः श्रियं कुलं धर्म पुत्रानाप्नोति तैः क्रमात् ॥
बिल्ववृक्षे तत्फले वा यो मां पूजयते नरः ॥३१॥

मृत्तिकाकी प्रतिमा पूजन करनेसे आयु, काष्ठकी प्रतिमा पूजन करनेसे सम्पत्ति, कांस्यकी पूजन करनेसे कुलवृद्धि, लोहकी

प्रतिमा पूजन करनेसे धर्मबुद्धि, पाषाणकी प्रतिमा पूजन करनेसे पुत्रप्राप्ति क्रमसे होती है, बिल्ववृक्षके नीचे, अथवा उसके फलमें जो मेरी आराधना करता है ॥ ३१ ॥

परां श्रियमिह प्राप्य मम लोके महीयते ॥ बिल्ववृक्षं समाश्रित्य यो मन्त्रान्विधिना जपेत् ॥ ३२ ॥

इस लोकमें महालक्ष्मीको प्राप्त होकर अन्तमें शिवलोकको प्राप्त होता है और बिल्ववृक्षके नीचे बैठकर जो विधिपूर्वक मंत्रोंको जपे ॥ ३२ ॥

एकेन दिवसेनैव तत्पुरश्चरणं भवेत् ॥
यस्तु बिल्ववने नित्यं कुटिं कृत्वा वसेन्नरः ॥ ३३ ॥

तो एकही दिनमें उस जप करनेवालेको पुरश्चरणका फल मिलता है, और जो मनुष्य बेलके वनमें कुटी बनाकर नित्य प्रति निवास करे ॥ ३३ ॥

सर्वे मन्त्राः प्रसिद्ध्यन्ति जपमात्रेण केवलम् ॥
पर्वताग्रे नदीतीरे बिल्वमूले शिवालये ॥ ३४ ॥

उसके जपमात्रसेही सब मंत्र सिद्ध होजाते हैं, पर्वतके ऊपर नदीके किनारे बिल्वके नीचे शिवालयमें ॥ ३४ ॥

अग्निहोत्रे केशवस्य संनिधौ वा जपेत्तु यः ॥
नैवास्य विघ्नं कुर्वंति दानवा यक्षराक्षसाः ॥ ३५ ॥

अग्निहोत्रकी शालामें विष्णुके मंदिरमें जो मंत्रका जप

करता है, दानव यक्ष राक्षस इसके जपमें विघ्न नहीं कर-सकते ॥ ३५ ॥

तं न स्पृशंति पापानि शिवसायुज्यमृच्छति ॥
स्थंडिले वा जले वह्नौ वायावाकाश एव वा॥३६॥

उसे कोई पाप स्पर्श नहीं करसकता, वह शिवके सायुज्य लोकको प्राप्त होता है, पृथ्वी जल अग्नि वायु आकाश ॥ ३६ ॥

गुरौ स्वात्मनि वा यो मां पूजयेत्प्रयतो नरः ॥
स कृत्स्नं फलमाप्नोति लवमात्रेण राघव ॥ ३७ ॥

पर्वत किंवा अपनी आत्मामेंही जो मनुष्य मेरा पूजन करता है, एक लवमात्रकी पूजा करनेसे उसे सम्पूर्ण फल प्राप्त होता है ॥ ३७ ॥

आत्मपूजासमा नास्ति पूजा रघुकुलोद्भव ॥
मत्सायुज्यमवाप्नोति चण्डालोऽप्यात्मपूजया ३८॥

हे राम ! अपने आत्मामें जो पूजन करता है उसकी बराबर दूसरी पूजा नहीं, आत्मामें पूजन करनेहारा चाण्डालभी मेरे लोकको प्राप्त होता है. सम्पूर्ण शुभकर्म आत्माहीको अर्पण करना, इसीका विचार करना, पापाचरण न करना, यही आत्माकी पूजा है ॥ ३८ ॥

सर्वान्कामानवाप्नोति मनुष्यः कम्बलासने ॥
कृष्णाजिने भवेन्मुक्तिर्मोक्षश्रीर्व्याघ्रचर्मणि ॥३९॥

ऊर्णावस्त्रके आसनपर पूजा करनेसे मनुष्यको सब कामनाकी प्राप्ति हो जाती है, मृगचर्मके आसनपर पूजा करनेसे मुक्ति और व्याघ्रचर्मपर पूजा करनेसे लक्ष्मीकी प्राप्ति होती है ॥ ३९ ॥

कुशासने भवेज्ज्ञानमारोग्यं पत्रनिर्मिते ॥ पाषाणे दुःखमाप्नोति काष्ठे नानाविधान्गदान् ॥ ४० ॥

कुशासनपर बैठकर पूजा करनेसे ज्ञान, पत्रके आसनपर आरोग्यता, पाषाणके आसनपर दुःख और काष्ठके आसनपर पूजा करनेसे अनेक प्रकारके रोग होते हैं ॥ ४० ॥

वस्त्रेण श्रियमाप्नोति भूमौ मन्त्रो न सिद्धयति ॥ प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि जपं पूजां समारभेत् ४१

वस्त्रपर बैठनेसे लक्ष्मीप्राप्ति और पृथ्वीपर बैठकर जपनेसे मंत्र सिद्ध नहीं होता, उत्तर वा पूर्वको मुखकर जप और पूजाका आरम्भ करना उचित है ॥ ४१ ॥

अथ मालाविधिं वक्ष्ये शृणुष्वावहितो नृप ॥ साम्राज्यं स्फाटिके स्यात्तु पुत्रजीवे परां श्रियम् ४२

हे रामचन्द्र! सावधान होकर सुनो, अब मालाकी विधि कहता हूं स्फटिककी मालासे साम्राज्यपद प्राप्त होता है पुत्रजीव(जियापोते की) मालासे अत्यन्त धनकी प्राप्ति होती है ॥ ४२ ॥

आत्मज्ञानं कुशग्रन्थौ रुद्राक्षाः सर्वकामदाः ॥ प्रवालैश्च कृता माला सर्वलोकवशप्रदा ॥ ४३ ॥

कुशकी ग्रंथिकी मालासे आत्मज्ञान और रुद्राक्षकी मालासे सम्पूर्ण कार्योंकी सिद्धि होती है, प्रवाल (मूंगा) की मालासे सब लोकके वश करनेकी सामर्थ्य होती है ॥ ४३ ॥

मोक्षप्रदा च माला स्याद्धामलक्याः फलैः कृता ॥
मुक्ताफलैः कृता माला सर्वविद्याप्रदायिनी ॥४४॥

आमलेके फलोंकी माला मोक्षकी देनेवाली है, मोतियोंकी माला सम्पूर्ण विद्याओंकी देनेहारी है ॥ ४४ ॥

माणिक्यरचिता माला त्रैलोक्यस्त्रीवशंकरी ॥
नीलैर्मरकतैर्वापि कृता शत्रुभयप्रदा ॥ ४५ ॥

माणिक्यकी माला त्रिलोकीकी स्त्रियोंको वश करनेहारी है नील मरकत मणिकी माला शत्रुको भय देती है ॥ ४५ ॥

सुवर्णरचिता माला दद्याद्वै महतीं श्रियम् ॥ तथा
रौप्यमयी माला कन्यां यच्छति कामिताम् ॥४६॥

सोनेकी बनी माला बडी शोभाको तथा लक्ष्मीको देती है, चाँदीकी मालासे मनेच्छित कन्या प्राप्त होती है ॥ ४६ ॥

उक्तानां सर्वकामानां दायिनी पारदैः कृता ॥
अष्टोत्तरशता माला तत्र स्यादुत्तमोत्तमा ॥ ४७ ॥

और एक पारेकी माला जो औषधी द्वारा बनती है, वह सम्पूर्णही कामनाको प्राप्त करती है एक सौ आठ (१०८) मणियोंकी माला सबसे उत्तम होती है ॥ ४७ ॥

शतसंख्योत्तमा माला पञ्चाशन्मध्यमा मता ॥
चतुःपञ्चाशती यद्वा अधमा सप्तविंशतिः ॥ ४८ ॥

सौ दानेकी उत्तम, पचास दानेकी मध्यम, अथवा ५४ दानेकी मध्यम है और सत्ताईस दानेकी माला अधम कहाती है। ॥ ४८ ॥

अधमा पञ्चविंशत्या यदि स्याच्छवनिर्मिता ॥
पञ्चाशदक्षराण्यत्रानुलोमप्रतिलोमतः ॥ ४९ ॥

पचीस दानोंकीभी अधम होती है, जो सौ दानोंकी माला हो वो पचास अक्षर (अ) से (ळ) तक उलटे सीधे क्रमसे होसकते हैं अर्थात् मेरुतक एकवार गिनसकता है ॥ ४९ ॥

इत्येवं स्थापयेत्स्पष्टं न कस्मैचित्प्रदर्शयेत् ॥ ५० ॥

इस प्रकारसे स्पष्ट स्थापन करे, और किसीको माला न दिखावे गुप्त जपे ॥ ५० ॥

वर्णैर्विन्यस्तया यत्तु क्रियते मालया जपः ॥
एकवारेण तस्यैव पुरश्चर्या कृता भवेत् ॥ ५१ ॥

जो अक्षरोंकी कल्पना करके मालाद्वारा जप किया जाता है, वर्णविन्यास (कल्पना) से एकही वारमें उसका पुरश्चरण हो जाता है ॥ ५१ ॥

सव्यपार्ष्णि गुदे स्थाप्य दक्षिणं च ध्वजोपरि ॥
योनिमुद्राबन्ध एष भवेदासनमुत्तमम् ॥ ५२ ॥

बायां चरण गुदस्थानपर रक्खे अर्थात् एडी लगावे और दहिना चरण उपस्थके ऊपर रखकर बैठे, यह उत्तम और अतिश्रेष्ठ योनिबंध आसन कहाता है ॥ ९२ ॥

योनिमुद्रासने स्थित्वा प्रजपेद्यः समाहितः ॥
यं कंचिदपि वा मन्त्रं तस्य स्युः सर्वसिद्धयः॥९३॥

जो योनिमुद्राके आसनसे बैठकर सावधान हो जप करता है कोई मंत्र हो आवश्य सिद्धिकी प्राप्ति होजाती है ॥ ९३ ॥

छिन्नारुद्धाःस्तम्भिताश्चमिलिता मूर्च्छितास्तथा ॥
सुप्ता मत्ता हीनवीर्या दग्धाःप्रत्यार्थिपक्षगाः॥९४॥

छिन्न, रुद्ध, स्तंभित, मिलित, मूर्छित, सुप्त, मत्त, हीनवीर्य, दग्ध, ग्रस्त, शत्रुपक्षके जाननेवाले यह मंत्र शास्त्रमें मंत्रोंके प्रकार लिखे हैं उनमें इनके लक्षण लिखे हैं कि इस प्रकारका मंत्र ऐसा होता है ॥ ९४ ॥

बाला यौवनमन्त्राश्च वृद्धा मत्ताश्च ये मताः ॥
योनिमुद्रासने स्थित्वा मन्त्रानेवंविधाञ्जपेत् ॥९५॥

तथा बालक, यौवन, वृद्ध, मत्त इत्यादि किसी प्रकारकाभी दूषित मंत्र क्यों न हो योनिमुद्राके आसनसे जप करे तो सिद्ध होजाता है ॥ ९५ ॥

तस्य सिद्ध्यन्ति ते मन्त्रा नान्यस्य तु कथंचन॥
ब्राह्मं मुहूर्तमारभ्यमध्याह्नं प्रजपेन्मनुम् ॥ ९६ ॥

अत ऊर्ध्वं कृते जाप्ये विनाशाय भवेद्ध्रुवम् ॥
पुरश्चर्याविधावेवं सर्वकाम्यफलेष्वपि ॥ ५७ ॥

इसी मुद्रासे वे मंत्र सिद्ध होते हैं दूसरे प्रकारसे नहीं होवें उषःकाल से लेकर मध्याह्न कालतक मंत्रका जप करना कहा है, इससे उपरान्त जपे तो कर्ताका नाश होता है । यह सम्पूर्ण काम्यफलोंके पुरश्चरणकी विधि है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

नित्ये नैमित्तिके वापि तपश्चर्यासु वा पुनः ॥
सर्वदेव जपः कार्यो न दोषस्तत्र कश्चन ॥ ५८ ॥

नित्य नैमित्तिक तपश्चर्याका नियम नहीं है, चाहे जबतक जितनी इच्छा हो जप करता रहे, उसमें कुछ दोष नहीं होता५८

यस्तु रुद्रं जपेन्नित्यं ध्यायमानो ममाकृतिम् ॥
षडक्षरं वा प्रणवं निष्कामो विजितेन्द्रियः ॥५९॥

जो मेरी मूर्तिका ध्यान करता हुआ निष्काम बुद्धिसे रुद्र-जप अथवा षडक्षर मंत्र ॐकार सहित जितेन्द्रिय होकर जपता है (ॐ नमः शिवाय) यह षडक्षर मंत्र है ॥ ५९ ॥

तथाथर्वशिरोमन्त्रं कैवल्यं वा रघूत्तम ॥
स तेनैव च देहेन शिवः संजायते स्वयम् ॥ ६० ॥

हे राम ! अथवा अथर्वशीर्ष वा कैवल्य उपनिषद्के जो मन्त्र जपता है वह उसी देहसे स्वयं शिव होजाता है अर्थात् सायुज्य मुक्तिको प्राप्त होता है ॥ ६० ॥

अधीते शिवगीतां यो नित्यमेतां जितेन्द्रियः ॥
शृणुयाद्वा स मुक्तः स्यात्संसारान्नात्र संशयः॥६१॥

जो नित्यप्रति शिवगीताको पढता और नित्य जप करता वा श्रवण करता है वह निःसन्देह संसारसे मुक्त होजाता है ॥६१॥

एवमुक्त्वा महादेवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥
रामः कृतार्थमात्मानममन्यत तथैव सः ॥ ६२ ॥

सूतजी बोले—हे शौकनादि ऋषियो ! भगवान् शिवजी रामचन्द्रजीसे इस प्रकार उपदेश कर वहांही अन्तर्धान होगये और आत्मज्ञानके प्राप्त होनेसे रामचन्द्रनेभी अपनेको कृतार्थ माना ॥ ६२ ॥

एवं मया समासेन शिवगीता समीरिता ॥
एतां यः प्रजपेन्नित्यं शृणुयाद्वा समाहितः ॥ ६३ ॥

यह मैने संक्षेपसे शिवगीता तुम्हारे प्रति वर्णन की, जो इसको जपते वा सावधान होकर श्रवण करते हैं ॥ ६३ ॥

एकाग्रचित्तो यो मर्त्यस्तस्य मुक्तिः करे स्थिता॥
अतः शृणुध्वं मुनयो नित्यमेतां समाहिताः ॥६४॥

और एकाग्र चित्तसे ध्यान करते हैं उनके हाथमें मुक्ति स्थित रहती है, इस कारण हे मुनियो ! नित्य प्रति सावधान होकर शिवगीताको सुनो ॥ ६४ ॥

अनायासेनैव मुक्तिर्भविता नात्र संशयः ॥
कायक्लेशो मनःक्षोभो धनहानिर्न चात्मनः ॥६५॥

अनायास मुक्ति हो जायगी इसमें कुछ भी सन्देह नहीं, शरीरको क्लेश नहीं, मानसिक क्लेश नहीं, धनका व्यय नहीं॥ ६५॥

न पीडा श्रवणादेव यस्मात्कैवल्यमाप्नुयात् ॥
शिवगीतामतो नित्यं शृणुध्वमृषिसत्तमाः ॥ ६६ ॥

न और किसी प्रकारकी पीडा है, केवल श्रवणसेही मुक्ति होजाती है, हे ऋषियो ! इस कारण तुम नित्यप्रति शिवगीताका श्रवण करो ॥ ६६ ॥

ऋषय ऊचुः ।

अद्यप्रभृति नः सूत त्वमाचार्यः पिता गुरुः ॥
अविद्यायाः परं पारं यस्मात्तारयितासि नः ॥६७॥

ऋषि बोले—हे सूतजी ! आजसे तुमही हमारे आचार्य पिता और गुरु हो जो कि, आपने हमको अविद्याके पार कर दिया ॥ ६७ ॥

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान्ब्रह्मदः पिता ॥ तस्मात्सूतात्मजत्वत्तःसत्यं नान्योऽस्ति नो गुरुः ॥ ६८ ॥

जन्म देनेवालेसे ब्रह्मज्ञान देनेवालेको गौरव अधिक है इस कारण हे सूत ! सत्य ही तुमसे अधिक कोई दूसरा गुरु हमारा नहीं है ॥ ६८ ॥

इत्युक्त्वा प्रययुः सर्वे सायंसंध्यामुपासितुम् ॥
स्तुवन्तः सूतपुत्रं ते संतुष्टा गोमतीतटम् ॥ ६९ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरिभागे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्म-

विद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे गीताधिका-
रिनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

व्यासजी बोले—ऐसा कहकर संपूर्ण ऋषि सायंसंध्या करनेके निमित्त गये, और सूतपुत्रकी बडाई करते गोमती नदीके समीप ध्यान करते हुए शिवपरायण हुए ॥ ६९ ॥

ॐ तत्सदिति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे भा० टी० गीताधिकारिनिरूपणं नाम षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

श्रीभगवानुवाच ।

अव्यक्ताद्भवत्कालः प्रधानपुरुषः परः ॥
तेभ्यः सर्वमिदं जातं तस्माद्ब्रह्ममयं जगत् ॥ १ ॥

अव्यक्तसे कालकी उत्पत्ति हुई तथा उसीसे प्रधान पुरुषकी उत्पत्ति हुई और उनसे यह सब जगत् उत्पन्न हुआ इस कारण यह सम्पूर्ण जगत् ब्रह्ममय है ॥ १ ॥

सर्वतः श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति ॥
सर्वतः पाणिपादं तत्सर्वतोक्षिशिरोमुखम् ॥ २ ॥

जो संसारमें सब ओरको अपने कर्ण किये और सबको व्याप्त करके स्थित हो रहा है, सब जगत्के पैर जिसके चरण और सबके हस्त, नेत्र, शिर, मुख, जिसके हाथ, नेत्र, शिर, मुख हैं तथा च श्रुतिः (सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्) इति ॥ २ ॥

सर्वेन्द्रियगुणाभासं सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ॥
सर्वाधारं सदानन्दमव्यक्तं द्वैतवर्जितम् ॥ ३ ॥

जो सम्पूर्ण इन्द्रिय और गुणोंके आभाससे युक्त शरीरमें स्थित है और जो सब इन्द्रियोंसे वर्जित है सबका आधार सदानन्दस्वरूप अप्रगट द्वैत रहित ॥ ३ ॥

सर्वोपम्यं परं नित्यं प्रमाणं चाप्यगोचरम् ॥
निर्विकल्पं निराभासं सर्वावासं परामृतम् ॥ ४ ॥

संपूर्ण उपमाके योग्य, सबसे परे नित्य तथा प्रमाणसे भी परे, निर्विकल्प, निराभास, सबमें व्यापक, परं अमृत स्वरूप ॥ ४ ॥

अभिन्नं भिन्नसंस्थानं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ॥
निर्गुणं परमं ज्योतिस्तत्स्थानं सूरयो विदुः ॥ ५ ॥

सबके पृथक् और सबमें स्थित, निरन्तर वर्तमान, निश्चल, अविनाशी, निर्गुण और परंज्योतिस्वरूप ऐसा उस स्थानको विद्वानोंने वर्णन किया है ॥ ५ ॥

सर्वात्मा सर्वभूतानां सबाह्याभ्यन्तरः परः ॥
सोहं सर्वगतः शांतो ज्ञानात्मा परमेश्वरः ॥ ६ ॥

वह सम्पूर्ण प्राणियोंका आत्मा बाह्य और आभ्यन्तरसे परे जिसे कहते हैं वही मैं सर्वगत शान्तस्वरूप ज्ञानात्मा परमेश्वर हूं ॥ ६ ॥

मया ततमिदं विश्वं जगत्स्थावरजंगमम् ॥
मत्स्थानि सर्वभूतानि इत्थं वेदविदो विदुः ॥ ७ ॥

यह स्थावर जंगमात्मक संसार मुझसेही उत्पन्न हुआ है सब प्राणी मेरेही निवास स्थान हैं, ऐसा वेदके जाननेवाले कहते हैं ॥ ७ ॥

प्रधान पुरुषश्चैव तत्र द्वयमुदाहृतम् ॥
तयोरनादिरुद्दिष्टः कालः संयोजकः परः ॥ ८ ॥
त्रयमेतदनाद्यन्तमव्यक्ते समवस्थितम् ॥
तदात्मकं तदन्यत्स्यात्तद्रूपं मामकं विदुः ॥ ९ ॥

एक प्रधान और एक पुरुष यह जो दो वर्णन किये हैं उन दोनोंका संयोग करनेवाला अनादि काल है यह तीनों अनादि हैं और अव्यक्तमें निवास करते हैं इनका वो तदात्मक रूप है वही साक्षात् मेरा स्वरूप है ॥ ८ ॥ ९ ॥

महदाद्यं विशेषांतं संप्रसूतेऽखिलं जगत् ॥
या सा प्रकृतिरुद्दिष्टा मोहिनी सर्वदेहिनाम् ॥ १० ॥

जो महत्से लेकर यह सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न करती है वह संपूर्ण देहधारियोंकी मोहित करनेवाली प्रकृति कहलाती है ॥ १० ॥

पुरुषः प्रकृतिस्थो वै भुंक्ते यः प्राकृतान्गुणान् ॥
अहंकारविविक्तत्वात्प्रोच्यते पंचविंशकः ॥ ११ ॥

यह पुरुषही प्रकृतिमें स्थित होकर प्रकृतिके गुणोंको

भोगता है, अहंकारसहित होनेसे पच्चीस तत्त्वनिर्मित यह देह कहाता है ॥ ११ ॥

आद्यो विकारः प्रकृतेर्महानात्मेति कथ्यते ॥
विज्ञानशक्तिर्विज्ञाता ह्यहंकारस्तदुत्थितः ॥ १२ ॥

प्रकृतिका प्रथम विकारही महान् कहाता है यह आत्मा विज्ञानशक्तियुक्त स्थित रहता है पीछे उसीसे विज्ञानशक्तिका जाननेहारा अहंकार उत्पन्न होता है ॥ १२ ॥

एक एव महानात्मा सोहंकारोभिधीयते ॥
स जीवः सोन्तरात्मेति गीयते तत्वचिंतकैः॥१३॥

उस एकही महान् आत्माका नाम अहंकार कहा जाता है वही जीव और अन्तरात्मा कहा जाता है, यह तत्त्वके जाननेवालोंने कहा है ॥ १३ ॥

तेन वेदयते सर्वं सुखं दुःखं च जन्मसु ॥ स
विज्ञानात्मकस्तस्य मनः स्यादुपकारकम् ॥ १४ ॥

यही जन्म लेकर, सुख और दुःख भोगता है यद्यपि वह विज्ञानात्मा है परन्तु मनके संग होनेसे वह मन उसके उपकारक है ॥ १४ ॥

तेनाविवेकजस्तस्मात्संसारः पुरुषस्य तु ॥
स चाविवेकः प्रकृतेः संगात्कालेन सोभवत्॥१५॥

अज्ञानके कारण इस पुरुषको संसारकी प्राप्ति हुई है और

प्रकृतिसे पुरुषका संयोग होनेसे कालांतरमें पुरुषको आज्ञानकी प्राप्ति हुई है ॥ १५ ॥

कालः सृजति भूतानि कालः संहरते प्रजाः ॥
सर्वे कालस्य वशगा न कालःकस्यचिद्वशे॥१६॥

यह कालही जीवोंको उत्पन्न करता और कालही संहार करता है, सम्पूर्णही कालके वशमें है, परन्तु काल किसीके वशमें नहीं है ॥ १६ ॥

सोन्तरा सर्वमेवेदं नियच्छति सनातनः ॥
प्रोच्यते भगवान्प्राणः सर्वज्ञः पुरुषोत्तमः ॥ १७ ॥

वही सनातन सबके हृदयमें स्थित होकर इन सबको जानता है और वशमें रखकर शासन करता है, उसेही भगवान् प्राणस्वरूप सर्वज्ञ पुरुषोत्तम कहते हैं ॥ १७ ॥

सर्वेन्द्रियेभ्यः परमं मन आहुर्मनीषिणः ॥
मनसश्चाप्यहंकारस्त्वहंकारान्महत्परम् ॥१८॥

मनीषी विद्वानोंने इन्द्रियोंसे परे मनको कहा है, मनसे परे अहंकार, अहंकारसे परे महत् है ॥ १८ ॥

महतः परमव्यक्तमव्यक्तात्पुरुषः परः ॥
पुरुषाद्भगवान्प्राणस्तस्मात्सर्वमिदं जगत् ॥ १९ ॥

महान्से परे अव्यक्त और अव्यक्तसे परे पुरुष है, पुरुषसे परे भगवान् प्राण स्वरूप है, उससे यह सब जगत् हुआ है ॥ १९ ॥

प्राणात्परतरं व्योम व्योमातीतोऽग्निरीश्वरः ॥
सोऽहं सर्वगतः शांतो मया ततमिदं जगत् ॥२०॥

प्राणसे परे व्योम (आकाश) और व्योमसे परे अग्नि ईश्वर है, सो मैं सबसे व्याप्त शान्तस्वरूप हूँ और मुझसे यह सब जगत् विस्तृत हुआ है ॥ २० ॥

नास्ति मत्तः परं भूतं मां विज्ञाय विमुच्यते ॥
नित्यं हि नास्ति जगति भूतं स्थावरजंगमम् ॥२१॥

मुझसे परे और कुछ नहीं है प्राणी मुझको जानकर मुक्त हो जाता है संसारमें स्थावर जंगम इनमें किसीको भी नित्यता नहीं है ॥ २१ ॥

ऋते मामेकमव्यक्तं व्योमरूपं महेश्वरम् ॥
सोऽहं सृजामि सकलं संहराम्यखिलं जगत् ॥२२॥

केवल एक मैंही व्योमरूप महेश्वर हूं सो मैंही सब जगत्को उत्पन्न करके संहार करता हूं ॥ २२ ॥

मयि मायामये देवः कालेन सह संगतः ॥
मत्सन्निधावेष कालः करोति सकलं जगत् ॥ २३ ॥

मायास्वरूप मुझमें कालकी संगति होकर मेरी स्थितिसेही यह काल सम्पूर्ण जगत्के उत्पन्न करनेमें समर्थ हुआ है कारण (कलनात् सर्वभुतानां कालः स परिकीर्तितः) संपूर्ण प्राणियोंकी आयुकी संख्या करनेसेही इसका नाम काल हुआ है ॥२३॥

नियोजयत्यनन्तात्मा ह्येतद्वेदानुशासनम् ॥
महादेवेति कालात्मा कालांतो दैत्यसूदनः॥ २४ ॥

यही अनन्तात्मा सब जगत्को यथायोग्य रखता है, यही वेदका अनुशासन है, इसीको महादेव कालात्मा कालान्त आदिनामसे उच्चारण करते हैं, यही दैत्योंको संहार करते हैं इस प्रकार जानना उचित है ॥ २४ ॥

वक्ष्ये समाहिता यूयं शृणुध्वं ब्रह्मवादिनः ॥
माहात्म्यं देवदेवस्य येन सर्वं प्रवर्तते ॥ २५ ॥

सूतजी बोले—हे ब्रह्मवादी ऋषियो ! तुम सावधान होके सुनो हम उन देवदेव आदि पुरुषका माहात्म्य कहते हैं जिनसे यह सम्पूर्ण जगत् प्रवृत्त हुआ है ॥ २५ ॥

नाहं तपोभिर्विविधैर्न दानैर्नापि चेज्यया ॥
शक्यो हि पुरुषैर्ज्ञातुमृते भक्तिमनुत्तमाम् ॥ २६ ॥

शिवजी बोले—अनेक प्रकारके तप ज्ञान दान और यज्ञसे पुरुष मुझे इस प्रकार नहीं जानसकते जिस प्रकार श्रेष्ठ भक्ति, करनेवाले मुझको जाननेको समर्थ होते हैं इससे केवल श्रेष्ठ भक्ति करनेवाले मुझे शीघ्र जानसकते हैं ॥ २६ ॥

अहं हि सर्वभूतानामन्तस्तिष्ठामि सर्वगः ॥
मां सर्वसाक्षिणं लोको न जानाति मुनीश्वराः॥२७॥

मैंही सर्वव्यापी होकर सब प्राणियोंके अन्तःकरणमें स्थित हूं, हे मुनीश्वरो ! मुझे यह संसार सब लोकोंका साक्षी नहीं जानता है ॥ २७ ॥

तस्यान्तरा सर्वमिदं यो हि सर्वांतरः परः ॥ सोहं

धाता विधाता च कालाग्निर्विश्वतोमुखः ॥ २८ ॥

जो यह परमात्मा सबके हृदयान्तरमें निवास करता है, उसीके अन्तरमें यह सब जगत् है वही धाता विधाता कालाग्निस्वरूप सर्वव्यापक परमात्मा मैं हूं ॥ २८ ॥

न मां पश्यंति मुनयः सर्वेऽपि त्रिदिवौकसः ॥
ब्रह्माद्या मनवः शक्रा ये चान्ये प्रथितौजसः ॥ २९ ॥

मुझको मुनि और सब देवताभी नहीं जानते हैं तथा ब्रह्मा इन्द्र मनु और भी विख्यात पराक्रमी मेरे रूपको यथार्थ जाननेमें समर्थ नहीं होते ॥ २९ ॥

गृणंति सततं वेदा मामेकं परमेश्वरम् ॥
यजंति विविधैर्यज्ञैर्ब्राह्मणा वैदिकैर्मखैः ॥ ३० ॥

मुझही एक परमेश्वरको सदा वेद स्तुति करते रहते हैं, (सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति) और ब्राह्मणादि अनेक प्रकारके छोटे बडे यज्ञोंद्वारा यजन करते रहते हैं ॥ ३० ॥

सर्वे लोका नमस्यंति ब्रह्मा लोकपितामहः ॥
ध्यायंति योगिनो देवं भूताधिपतिमीश्वरम् ॥ ३१ ॥

पितामह ब्रह्मासहित सम्पूर्ण लोक नमस्कार करते हैं और योगी जन सम्पूर्ण भूतोंके अधिपति भगवान्का ध्यान करते हैं ॥ ३१ ॥

अहं हि सर्वहविषां भोक्ता चैव फलप्रदः ॥
अहं सर्वतनुर्भूत्वा सर्वात्मा सर्वसंस्थितः ॥ ३२ ॥

मैंही सम्पूर्ण हवियोंका भोक्ता और फल देनेवाला हूं मैंही सबका शरीररूप होकर सबका आत्मा सबमें स्थित हूं ॥ ३२॥

मां हि पश्यंति विद्वांसो धार्मिका वेदवादिनः ॥
तेषां संनिहितो नित्यं ये मां नित्यमुपासते ॥३३॥

मुझे विद्वान् धर्मात्मा और वेदवादी देखसकते हैं उनके निकट जो नित्यप्रति मेरी उपासना करते हैं ॥ ३३ ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या धार्मिका मामुपासते ॥
तेषां ददामि तत्स्थानमानंदं परमं पदम् ॥ ३४ ॥

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, धार्मिक मेरी उपासना करते हैं उनको मैं परमानन्द परमपद स्वरूप अपने स्थानको देता हूँ ॥ ३४ ॥

अन्येपि ये स्वधर्मस्थाः शूद्राद्या नीचजातयः ॥
भक्तिमंतः प्रमुच्यंते कालेनापि हि संगताः॥३५॥

और जो शूद्र आदि नीच जाती अपने धर्ममें स्थित हैं और वे मेरी भक्ति करते हैं वे कालसे यद्यपि मिले हुए हैं तथापि मेरी कृपादृष्टिसे मुक्त होजाते हैं ॥ ३५ ॥

न मद्भक्ता विनश्यंति मद्भक्त्या वीतकल्मषाः ॥
आदावेतत्प्रतिज्ञातं न मे भक्तः प्रणश्यति ॥३६॥

मेरे भक्त पापरहित होजाते हैं उनका कभी नाश नहीं होता प्रथम तो यही मेरी प्रतिज्ञा है कि मेरे भक्तोंका कभी नाश नहीं होता यदि वह बीचमेंही सिद्धि प्राप्त होनेसे पूर्व

मृतक होजाय तो फिर योगीके घरमें जन्म ले सत्संगको प्राप्त हो मुक्त होजाता है ॥ ३६ ॥

यो वै निंदति तं मूढो देवदेवं स निन्दति ॥
यो हि तं पूजयेद्भक्त्या स पूजयाति मां सदा॥३७॥

जो मूर्ख मेरे भक्तोंकी निन्दा करता है उसने देवदेव साक्षात् मेरीही निन्दा की और जो प्रेमसे उनका पूजन करता है उसने मानो मेराही पूजन किया ॥ ३७ ॥

शिवस्य परिपूर्णस्य किं नाम क्रियते शुभम् ॥
यत्कृतं शिवभक्ताय तत्कृतं स्याच्छिवे मयि॥३८॥

परिपूर्ण शिवस्वरूपमें और क्या शुभ किया जाय जो कुछ शिवके भक्तके निमित्त किया है. वह सब कुछ मुझ शिवस्वरूपकेही वास्ते किया है ॥ ३८ ॥

पत्रं पुष्पं फलं तोयं मदाराधनकारणात् ॥ यो मे ददाति नियतं स मे भक्तः प्रियो मम ॥ ३९ ॥

जो प्रेमसे मेरे आराधनाके कारण पत्र पुष्प फल जल नियमित होकर प्रदान करता है वह मेरा भक्त और मेरा प्यारा है ॥ ३९ ॥

अहं हि जगतामादौ ब्रह्माणं परमेष्ठिनम् ॥
उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मा हि गीयते ॥४०॥

मैंही जगत्की आदिमें सृष्टि उत्पन्न करनेसे ब्रह्मा परमेष्ठी कहा जाता हूं, तथा पालन करनेसे उत्तम पुरुष परमात्मा इस नामसे गाया जाता हूं ॥ ४० ॥

अहमेव हि सर्वेषां योगिनां गुरुरव्ययः ॥
धार्मिकाणां च गोप्ताहं निहंता वेदविद्विषाम् ॥ ४१ ॥

मैंही सम्पूर्ण योगियोंका अविनाशी गुरु हूं, मैंही धर्मात्मा-ओंका रक्षक और वेदविरोधियोंका नाश करनेवाला हूं ॥ ४१ ॥

अहं हि सर्वसंसारान्मोचको योगिनामिह ॥
संसारहेतुरेवाहं सर्वसंसारवर्जितः ॥ ४२ ॥

मैंही योगियोंको संसारबन्धनके सब प्रकारके क्लेशसे छुटानेवाला हूं, मैंही सब प्रकार संसारसे रहित होकर संसारका कारणभी हूं ॥ ४२ ॥

अहमेव हि संहर्ता स्रष्टाहं परिपालकः ॥ माया
वै मामिका शक्तिर्माया लोकविमोहिनी ॥ ४३ ॥

मैंही सब संसारको उत्पन्न पालन करनेहारा तथा संहार करता हूं कारण कि, कार्य अपने कारणमें लय हो जाताहैं, इससे सब जगत् मुझसे उत्पन्न होकर मुझमेंही लय होजाता है तथा च श्रुतिः (विश्वस्य कर्ता भुवनस्य गोप्ता) और यह मेरी महाशक्ति लोकको मोहनेवाली माया है जो अनेक प्रकारके जगत्‌को उत्पन्न करती है (अजामेकां लोहितशुक्लकृष्णां बह्वीः प्रजाः सृजमाना सरूपाः) इति श्रुतेः ॥ ४३ ॥

ममैव च परा शक्तिर्या सा विद्येति गीयते ॥ नाश-
यामि च तां मायां योगिनां हृदि संस्थितः ॥ ४४ ॥

और मेरीही यह परा शक्ति विद्या नामसे गाई जाती है,

मैं योगियोंके हृदयमें स्थित होकर उस अज्ञानकी उत्पन्न करनेवाली संसारमें भ्रमानेवाली मायाको नाश करता हूं ॥ ४४ ॥

अहं हि सर्वशक्तीनां प्रवर्तकनिवर्तकः ॥
आधारः सर्वभूतानां निधानममृतस्य च ॥ ४५ ॥

मैंही सम्पूर्ण शक्तियोंके प्रेरणा करनेवाला हूँ, और मैंही निवृत्त करनेवाला हूँ, मैंही अमृतका निधान हूँ (स दाधार पृथ्वीं द्यामुतेमामिति श्रुतिः) श्रुतिसे भी यह वार्ता सिद्ध है कि, वह विश्वको धारण कर रहा है ॥ ४५ ॥

अहमेव जगत्सर्वं मय्येव सकलं जगत् ॥
मत उत्पद्यते विश्वं मय्येव च विलीयते ॥ ४६ ॥

मैंही सम्पूर्ण जगत् हूँ और मुझमेंही सब जगत् है अर्थात् यह सब कुछ मैंही हूं दूसरी वस्तु कुछ नहीं है (सर्वं खल्विदं ब्रह्म नेह नानास्ति किंचनेति श्रुतिः) यह सब जगत् मुझसेही उत्पन्न होकर मुझमेंही लय होजाता है (यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च) जैसे मकडी अपनेमेंसे जाला निकालकर ग्रहण करलेती है इसी प्रकार मैं जगत् उत्पन्न कर फिर लय कर लेता हूं ॥ ४६ ॥

अहं हि भगवानीशः स्वयंज्योतिः सनातनः ॥
परमात्मा परं ब्रह्म मत्तो ह्यन्यन्न विद्यते ॥ ४७ ॥

मैंही भगवान् ईश्वर स्वयंज्योति सनातन हूं, मैंही परमात्मा परब्रह्म हूं, मुझसे परे कोई दूसरा नहीं है ॥ ४७ ॥

एका सर्वांतरा शक्तिः करोति विविधं जगत् ॥
आस्थाय ब्रह्मणो रूपं मन्मयी मदधिष्ठिता॥४८॥

यह एक शक्ति तो सबके अन्तःकरणमें स्थित होकर अनेक प्रकारके जगत्को उत्पन्न करती है यही मेरी शक्ति ब्रह्म ब्रह्मस्वरूपमें स्थित होकर जगत्की रचना करती है और मुझहीमें स्थित है ॥ ४८ ॥

अन्या च शक्तिर्विपुला संस्थापयति या जगत् ॥
भूत्वा नारायणो देवो जगन्नाथो जगन्मयः ॥४९॥

दूसरी शक्ति नारायण देव जगन्नाथ जगन्मय विष्णुस्वरूप होकर इस सम्पूर्ण जगत्को स्थापित करती अर्थात् पालती है ॥ ४९ ॥

तृतीया महती शक्तिर्निहंति सकलं जगत् ॥
तामसी मे समाख्याता कालाख्या रौद्ररूपिणी ५०॥

तीसरी महती शक्ति है जो संपूर्ण जगत्का संहार करती है उस शक्तिका नाम तामसी है तथा उसका रौद्ररूप है और कालनाम है ॥ ५० ॥

ध्यानेन मां प्रपश्यंति केचिज्ज्ञानेन चापरे ॥
अपरे भक्तियोगेन कर्मयोगेन चापरे ॥ ५१ ॥

कोई मुझे ज्ञानसे देखते हैं, कोई ध्यानसे, कोई भक्तियोग और कोई कर्मयोगसे अर्थात् कर्मकाण्डके आश्रयसे मेरा भजन करते हैं ॥ ५१ ॥

सर्वेषामेव भक्तानामिष्टः प्रियतरो मम ॥ यो हि ज्ञानेन मां नित्यमाराधयति नान्यथा ॥ ६२ ॥

परन्तु इन सब भक्तोंमें वह मुझे सबसे अधिक प्यारा है जो नित्य प्रज्ञासे मेरी आराधना करता है ॥ ५२ ॥

अन्ये च येत्र भक्ता मे मदाराधनकांक्षिणः ॥ तेऽपि मां प्राप्नुवंत्येव नावर्तन्ते च वै पुनः॥६३॥

औरभी जो मेरे भक्त मेरी उपासना करते हैं, वेभी मुझको प्राप्त होजाते हैं और फिर उनका जन्म नहीं होता (यथा य इह स्थातुमपेक्षते तस्मै सर्वैश्वर्यं ददाति यत्र कुत्रापि म्रियते देहान्ते देवः परं ब्रह्म तारकं व्याचष्टे येनामृतीभूत्वा सोमृतत्वं च गच्छाति) अर्थात जो उसकी भक्ति करता है और उन्नतिको प्राप्त होनेकी इच्छा करता है, उसे भगवान् सम्पूर्ण ऐश्वर्य देते हैं और वहही मृतक हो देहान्तमें भगवान् उसे तारक मंत्रका उपदेश करते हैं, जिससे उसका फिर जन्म नहीं होता ॥ ६३ ॥

मया ततमिदं कृत्स्नं प्रधानपुरुषात्मकम् ॥ मय्येव संस्थितं सर्वं मया संप्रेर्यते जगत् ॥ ६४ ॥

मैंनेही सम्पूर्ण प्रधान और पुरुषात्मक जगत् उत्पन्न किया है, मुझहीमें यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है और मुझसेही प्रेरित होता है ॥ ६४ ॥

नाहं प्रेरयिता विप्राः परमं योगमाश्रितः ॥
प्रेरयामि जगत्कृत्स्नमेतद्यो वेद सोऽमृतः ॥९५॥

मैं इसका प्रेरक नहीं हूं अर्थात् उपाधिसे प्रेरण करनेवाला हूँ ऐसा विद्वान् जानते हैं परन्तु वास्तवमें मैं प्रेरक नहीं, हे परमयोग साधनेवाले ब्राह्मणो ! जिस प्रकारसे मैं प्रेरक नहीं हूं और जिस प्रकारसे प्रेरक हूं इसको जो जानते हैं वे मुक्तस्वरूप हैं अर्थात् तत्त्वविचारसे जानना उचित है कि, वास्तवमें ब्रह्म कुछ नहीं करता ॥ ९५ ॥

पश्याम्यशेषमेवेदं वर्तमानं स्वभावतः ॥
करोति कालो भगवान्महायोगेश्वरः स्वयम् ॥ ९६ ॥

मैं इस संसारको जो स्वभावसे वर्तमान है सब ओरसे देखता हूं परन्तु महायोगेश्वर काल भगवान् यह सब कुछ स्वयं करता है ॥ ९६ ॥

योगात्संप्रोच्यते योगी मया शास्त्रेऽपि सूरिभिः ॥
योगेश्वरोऽसौ भगवान्महादेवो महान्प्रभुः ॥ ९७ ॥

पंडित जन मेरे शास्त्रके अनुष्ठान करनेवालोंको योगी कहते हैं और यह भगवान् महादेव महाप्रभु योगेश्वर कहलाते हैं ॥ ९७ ॥

महत्त्वात्सर्वसत्त्वानां परत्वात्परमेष्ठिनः ॥
प्रोच्यते भगवान्ब्रह्मा महादेवो महेश्वरः ॥ ९८ ॥

यह भगवान् महादेव महेश्वरही सम्पूर्ण प्राणियोंसे अधिक

होनेसे और परेसे परे होनेसे परमेष्ठी ब्रह्मा कहलाते हैं अर्थात् गुण कर्मोंके अनुसार अनेक नाम हैं इनके यथार्थ जाननेसे परमपदकी प्राप्ति होती है ॥ ९८ ॥

यो मामेवं विजानाति महायोगेश्वरेश्वरम् ॥
सोऽविकल्पेन योगेन युज्यते नात्र संशयः ॥९९॥

जो इस प्रकार मुझको महायोगियोंके ईश्वर जानते हैं वे विकल्परहित योगको प्राप्त होते हैं इसमें कुछ संदेह नहीं ९९॥

अहं प्रेरयिता देवः परमानंदमाश्रितः ॥
नृत्यामि योगी सततं यस्तं वेद स वेदवित् ॥६०॥

ॐ तत्सदिति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु
शिवराघवसंवादे, ब्रह्मनिरूपणं नाम
सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

मैंही परमानन्द स्वरूपमें स्थित होकर सबका प्रेरक देव हूं मैंही सबमें नृत्य करता हूं अर्थात् कर्मानुसार सब भूतोंको भ्रमण कराता हूं जो इस बातको जानता है वही वेदका जाननेवाला होताहै इस प्रकार तत्त्वज्ञानसे मुझे जानकर परम पदको प्राप्त होताजा है ॥ ६० ॥

ॐ तत्सदिति श्रीपद्मपुराणे शिवराघवसंवादे भा० टी० ब्रह्म-
निरूपणयोगो नाम सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

श्रीराम उवाच ।

देवदेव महादेव सृष्टिसंहारकारक ॥
करुणा क्रियतां नाथ वद मे मुक्तिसाधनम् ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्र बोले—हे देवदेव ! हे सृष्टिसंहारकर्ता ! हे नाथ ! कृपा करके मुझसे मुक्तिके साधन कहिये ॥ १ ॥

श्रीशिव उवाच ।

शृणु राम महाप्राज्ञ एकाग्रकृतमानसः ॥
तथेदं कथयिष्यामि महानंदकरं परम् ॥ २ ॥

श्रीभगवान् बोले—हे बुद्धिमान् रामचन्द्र ! मन लगाकर सुनो; यह महाआनंददायक वार्ता मैं तुम्हारे प्रति वर्णन करता हूं ॥ २ ॥

सर्वज्ञं सर्वमाश्रित्य सर्वेशं सर्वलक्षणम् ॥
भावाभावविनिर्मुक्तमुदयास्तविवर्जितम् ॥ ३ ॥

उस सर्वज्ञ सर्वस्वरूप सर्वेशका आश्रय करके जो कि, सबका लक्षणस्वरूप है भाव और अभावसे हीन उदय और अस्तसे वर्जित ॥ ३ ॥

स्वभावेनोदितं शान्तं यन्नो पश्यति नाव्ययम् ॥
निरालम्बं परं सूक्ष्मं सर्वाधारं परात्परम् ॥ ४ ॥

स्वभावसेही प्रकाशस्वरूप शान्तस्वरूप है जिस अव्ययको कोई देखनेको समर्थ नहीं, आलम्बरहित परम सूक्ष्म सबके आधारभूत परेसे परे है ॥ ४ ॥

नो स्थानं ध्येयसंपन्नं न लक्ष्यं न च भावना ॥
नावद्धकरणं नैव नाभ्यासाच्चालनेन च ॥ ५ ॥

वह ध्यान ध्येय संपन्न नहीं है, न लक्ष्य है, न भावना, न अवद्धकरण, न अभ्यासके चलायमान करनेसे ॥ ५ ॥

न इडा पिंगला चैव सुषुम्ना नागमागमौ ॥
अनाहते न कण्ठे च नैव नादे च बिंदुके ॥ ६ ॥

न इडा पिंगला, न सुषुम्ना नाडीद्वारा उसका आना जाना न अनाहत, न कण्ठमें, न नादमें और न बिंदुमें ॥ ६ ॥

हृदये नैव शीर्षे च चक्षुरुन्मीलने न च ॥
ललाटे नैव नासाग्रे प्रवेशे निर्गमे न च ॥ ७ ॥

न हृदय, न शिर, न नेत्रोंके बन्द करनेमें, न ललाटमध्यमें, न नासाके अग्र भागमें, न प्रवेश होनेमें, न निकलनेमें ॥ ७ ॥

न बिंदुमालिनी हंसो नाकाशो नैव तारका ॥
न निरोधो न च ज्ञानं मुद्रायां नैव चासने ॥ ८ ॥

न बिंदुमालिनी, न हंस, न आकाश, न तारका, न निरोध, न ज्ञान, न मुद्रा, न आसन ॥ ८ ॥

रेचके पूरके नैव कुम्भके न च सम्पुटे ॥ न चिंता न च शून्यं च न स्थानं न च कल्पना ॥ ९ ॥

न रेचक, न पूरक, न कुम्भक, न संपुट, न चिन्ता, न शून्य, न स्थान, न कल्पना ॥ ९ ॥

जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिर्न तथा नैव तुरीयकम् ॥
न सालोक्यं समीप्यं च सरूपं न सयोज्यता ॥१०॥

न जाग्रत्, न स्वप्न, न सुषुप्ति, न तुरीय, न सालोक्य, न सामीप्य, न सारूप्य, न सायुज्य ॥ १० ॥

न बिंदुभेदग्रथितैर्नासाग्रं न निरीक्षणम् ॥
न ज्योतिश्च शिखान्तेन न किंचित्प्राणधारणे॥११॥

न बिंदुके भेदमें ग्रथित होना, न नासिकाका अग्रभाग देखना, न ज्योति, न शिखान्त, न कुछ प्राणधारणमें ॥११॥

न ऊर्ध्वं नादिमध्ये च नादिमध्यावसानकम् ॥
नातिदूरं न चासन्नं प्रत्यक्षं च परोक्षकम् ॥१२॥

न ऊर्ध्व, न आदि, न मध्यमें, न आदि मध्य और अन्त, न दूर, न धोरे, प्रत्यक्ष, न परोक्ष (दृष्टिके अगोचर) ॥१२॥

न ह्रस्वं न च दीर्घं च न प्लुतं नैव चाक्षरम् ॥
न त्रिकोणं चतुष्कोणं न दीर्घं न च वर्तुलम् ॥
ह्रस्वदीर्घविहीनं च सुषुम्ना नैव बुध्यते ॥ १३ ॥

न ह्रस्व, न दीर्घ, न प्लुत, न अक्षर, न त्रिकोण, न चतुष्कोण, न दीर्घ, न गोल, न ह्रस्व और दीर्घविहीन सुषुम्नासेभी जानने अयोग्य ॥ १३ ॥

न ध्यानमागमाश्चैव नायतः पुष्टकस्तथा ॥ १४ ॥
न वामे दक्षिणे चैव नाच्छादु नभमध्यगम् ॥

न स्त्रीलिंगं न पुंलिंगं न षंढं न नपुंसकम् ॥ १९ ॥

न ध्यान, न शास्त्र, न आयत (दीर्घ), न पुष्टक (पोषणकारक), न वाम, न दक्षिण, न आच्छादित, न मध्यमें, न स्त्री, न पुरुष, न षण्ढ, न नपुंसक ॥ १४ ॥ १९ ॥

न साचारं निराचारं न तर्कं तर्कहेतुकम् ॥ न लयो विलयश्चैव अस्तिनास्तिविवर्जितम् ॥ १६ ॥

न आचार सहित, न आचाररहित, न तर्क, न तर्कका कारण, लय, विलय, अस्ति, नास्तिके रहित ॥ १६ ॥

न माता न पिता तस्य न भ्राता न च मातुलः ॥ न पुत्रोपि कलत्रं च न पौत्रो न च पुत्रिका ॥ १७ ॥

न उसके माता, न पिता, न भाई, न मातुल (मामा), न पुत्र, न स्त्री, न पोता, न पुत्री है ॥ १७ ॥

दुष्टमाया न कर्तव्या स्थानबंधं तथैव च ॥ ग्रामबंधं गेहबंधमात्मबंधं तथैव च ॥ १८ ॥

उसके निमित्त न दुष्ट मायाका कर्तव्य है न स्थानबन्ध, इसी प्रकार ग्रामबन्ध घरका बंधन तथा आत्माका बन्धन ॥ १८ ॥

ज्ञातिबंधं न कर्तव्यं वर्णबंधं विपर्ययम् ॥ न व्रतं न च तीर्थं च नोपासनं न च क्रिया ॥ नानुमानेन कर्तव्यं क्षेत्रबंधं च सेवया ॥ १९ ॥

न जातिबन्धन करनेकी आवश्यकता, न वर्णबन्धन, न उसका विपर्यय (उलटा), न व्रत, न तीर्थ, न उपासना, न क्रिया ॥ १९ ॥

न शीतं न च चोष्णं च न किंचित्प्राणधारणा॥२०॥

न अनुमानके करनेकी आवश्यकता, न क्षेत्रबंध, न सेवा, न शीत, न कुछ प्राणधारणा ॥ २० ॥

यो विपक्षविनिर्मुक्तं हेतुदृष्टांतवर्जितम् ॥
सबाह्याभ्यंतरे चैव एकाकारं परात्परम् ॥ २१ ॥

जो अनेक पक्षोंसे रहित हेतु और दृष्टान्तसे वर्जित, बाह्य अन्तर एकाकार, परेसे परे तथा उससेभी परे देव विश्वके आत्मा सदाशिव हैं ॥ २१ ॥

परात्परतरो देवो विश्वमात्मा सदाशिवः ॥
सूर्यानंतसहस्राभश्चंद्रानंतनिभाननः ॥ २२ ॥
गणेशानंतलावण्यो विष्ण्वनंताभिमर्दनः ॥
दावाग्न्यनंतज्वलितो रुद्रानंतोग्ररूपवान् ॥ २३ ॥

जो अनन्त सूर्यकी समान प्रकाशमान, जो अनन्त चन्द्रमाकी समान कान्तिमान, अनन्त गणेशकी समान शोभायमान, अनन्त विष्णुकी समान दैत्योंके मारनेवाले, अनन्त दावाग्निकी समान जाज्वल्यमान, अनन्त रूप, रुद्रकी समान उग्ररूपधारी ॥ २२ ॥ २३ ॥

समुद्रानंतगंभीरो वाय्वनंतमहाबलः ॥
आकाशानंतविस्तारो यमानंतभयानकः ॥ २४ ॥

अनंतमेरुविस्तारो कुबेरानंतऋद्धिदः ॥
निष्कलंको निराधारो निर्गुणोगुणवर्जितः ॥ २५ ॥

अनन्त समुद्रकी समान गंभीर, अनन्त वायुकी समान महाबली, अनन्त आकाशकी समान विस्तारवान्, अनन्त यमराजकी समान भयानक, अनन्त सुमेरुकी समान विस्तृत, अनन्त कुबेरकी समान ऋद्धिदायक, निष्कलंकी, निराधार, निर्गुण, गुणवर्जित है ॥ २४ ॥ २५ ॥

न कामो न च क्रोधश्च पैशुन्यं न च दंभिता ॥
न माया न च लोभश्च न मोहः शोक एवच ॥ २६ ॥

न काम, न क्रोध, न पिशुनता, न पाखण्डता, न माया, न मोह, न लोभ, न शोक ॥ २६ ॥

अप्रग्राह्यश्च लोभश्च त्यजेत्सर्वं शनैः शनैः ॥
न च साधनसिद्धिं च औषधीफलमेव च ॥ २७ ॥

इनके द्वारा तथा लोभके द्वारा परमात्मा प्राप्त नहीं होता शनैः शनैः लोभादिको त्यागन कर दे; साधन सिद्धि औषधि फल ॥ २७ ॥

रसं रसायनं चैव धातुवादं तथैव च ॥
अञ्जनं खड्गसिद्धिश्च पातालं न च खेचरम् ॥ २८ ॥
सिद्धं रसं तथा मूलं नैव ग्राह्यं कदाचन ॥
तृणवत्त्यज्यतां सर्वं यदि प्राप्तमुपार्जितम् ॥ २९ ॥

इस रसायन धातुवाद (वितण्डा) अञ्जन (जिसके लगानेसे त्रिलोकीका ज्ञान हो) खड्गसिद्धि पाताल तथा आकाश गमनसिद्धि रस तथा मूल इनमें किसी प्रकार मन लगाना न चाहिये, किन्तु यह सब प्रकारकी सिद्धियें तृणकी समान सब त्यागना चाहिये चाहे स्वयं प्राप्त हुई हों ॥ २८ ॥ २९ ॥

महासिद्ध्यष्टकं चैव अणिमादिगुणाष्टकम् ॥
तृणवत्त्यज्यते सर्वं संयोगान्मुच्यते ध्रुवम् ॥ ३० ॥

आठों महासिद्धि और अणिमादिक सिद्धियें इनके संयोगको तृणवत् त्यागनेसे मुक्त होजाता है इसमें कोई संदेह नहीं ॥ ३० ॥

कृतं कर्म परित्यज्य सततं जनवर्जितम् ॥ शून्याशून्यमयो भूत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ॥ ३१ ॥

किये हुए कर्मोंके फलमें इच्छा न करनी तथा उनका त्याग करना सदा संगरहित होना इस प्रकार शून्य, अशून्यमें होकर कुछ भी न विचारे ॥ ३१ ॥

चिंतयेत्कल्पयेन्नैव मननं मनगोचरम् ॥
नष्टं मनस्तथा चिंता मन इन्द्रियमेव च ॥ ३२ ॥

न कुछ चिन्तन करे, न कल्पना करे, न मनन करे, कारण कि वह मनकेभी परे है मनके नष्ट होनेसे चिन्ता और इंद्रियादि लय हो जाती हैं ॥ ३२ ॥

सर्वचिंतां परित्यज्य अचिंत्यं चित्तमाश्रयेत् ॥
बहुनात्र किमुक्तेन हृदि चिन्तां निवेशयेत् ॥ ३३ ॥

अनवस्थां ततः कृत्वा न किंचिदपि चिंतयेत् ॥
अनित्यकर्मसंत्यागी नित्यानुष्ठानतोपि वा ॥ ३४॥

सम्पूर्ण चिन्ताको त्यागन करके चित्तको अचिन्ताके आश्रय करे बहुत कहनेसे क्या है हृदयमें विचार प्रवेश करके और उसे अनवस्थाकर अर्थात् लय करके फिर कुछभी न विचारे, अनित्य कर्मका त्यागनेवाला अथवा नित्य अनुष्ठानमें तत्पर ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

सर्वभूतांतरावासवाङ्मनोबुद्धिमोहिनी ॥ ब्रह्मैव निखिलं कर्म किं त्याज्यं विषयादिकम् ॥ ३५ ॥

ॐ तत्सदिति श्रीपद्मपुराणे शिवगीतासूपनिषत्सु शिव-राघवसंवादे जीवन्मुक्तिस्वरूपनिरूपणयोगो नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

सम्पूर्ण प्राणियोंके अन्तरमें निवास करनेहारे वाणी मन और बुद्धिसे मोहनेहारे अनेक प्रकारके यह सब कर्म जो कुछभी हैं सब ब्रह्मरूपही हैं; फिर विषयादिकमें कौनसी वस्तु त्यागनेके योग्य है, कारण कि (ईशावास्यमिद ँ सर्वं यत्किंचजगत्यां जगदिति श्रुतिः) यह सब कुछ ब्रह्महीं है ॥ ३५ ॥

इति श्रीपद्मपुराणे उपरखण्डे शिवगीतासूपनिषत्सु ब्रह्म-विद्यायां योगशास्त्रे शिवराघवसंवादे मुरादाबाद निवासी पं० ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां जीवन्मुक्ति-स्वरूपनिरूपणं योगो नामाष्टादशोऽध्यायः ॥ १८ ॥

फाल्गुनकृष्ण त्रयोदशी, शशिदिन शंभु मनाय ॥
शिवगीताको तिलक यह, पूर्ण कियो मन लाय१॥
उन्निससै पंचाश शुभ, सम्वत्सर सुखदान ॥
चंद्रमौलि शंकरसुमिर, भाष्यो गीताज्ञान ॥ २ ॥
पढहिं सुनहिं आचरहिं जो, पावहिं पदनिर्वान ॥
भक्तिलहहिं शिवकी शुभद, नितनूतन कल्यान३॥
हे शंकर यह आपके, अर्पण कियो बनाय ॥
करिये अंगीकार प्रभु, पुष्पांजलि गिरिशाय ॥४॥
नित ज्वालाप्रसाद पद, वन्दत वारंवार ॥
यह प्रसाद है आपको, करिये प्रभु निस्तार ॥५॥

॥ श्रीसांवसदाशिवार्पणमस्तु ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना–

गङ्गाविष्णु श्रीकृष्णदास,
"लक्ष्मीवेंकटेश्वर" स्टीम्–प्रेस,
कल्याण–बम्बई.

खेमराज श्रीकृष्णदास,
"श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्–प्रेस,
बम्बई.